योगविद्या

वर्ष 11 अंक 6
जून 2022
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2022

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

कवर एवं प्लेट 1-2 : पटना, 1979
प्लेट 3 : नई दिल्ली, 1981; 4 : राजगीर, 1977

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रति गुरु-भाइयों की श्रद्धांजलि

अल्पावस्था में ही अध्यात्म-मार्ग में जो असीम प्रगति दिखलाकर आपने लोगों को अचम्भित कर दिया है, वह अत्यन्त श्लाघनीय है। आप जैसे योग्य आत्मानुभवी, ज्ञानी, विद्वान्, कार्यकुशल व्यक्ति को पाकर 'दिव्य जीवन मण्डल' धन्य हुआ है तथा बड़ी तेजी से अध्यात्म-विद्या के प्रसार में संलग्न है।

आंग्लशिक्षा प्राप्त विद्वान् सदस्यों के मध्य रहते हुए भी आपने हिन्दी भाषा में लिखकर तथा पत्र-पत्रिकाएँ निकाल कर अपनी मातृभाषा की जो सेवा की है उसके लिए आपकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। हम सभी आपके इस उपकार को नहीं भूल सकेंगे क्योंकि यदि इस प्रकार आप हिन्दी-सेवा न करते तो अधिकांश हिन्दीभाषी स्वामी शिवानन्द जी महाराज के दिव्य उपदेशों से वंचित ही रह जाते।

– श्री दुर्गा शरण लाल, अध्यक्ष,
दिव्य जीवन संघ शाखा, राजगृह

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 11 अंक 6 जून 2022
(प्रकाशन का 60 वाँ वर्ष)

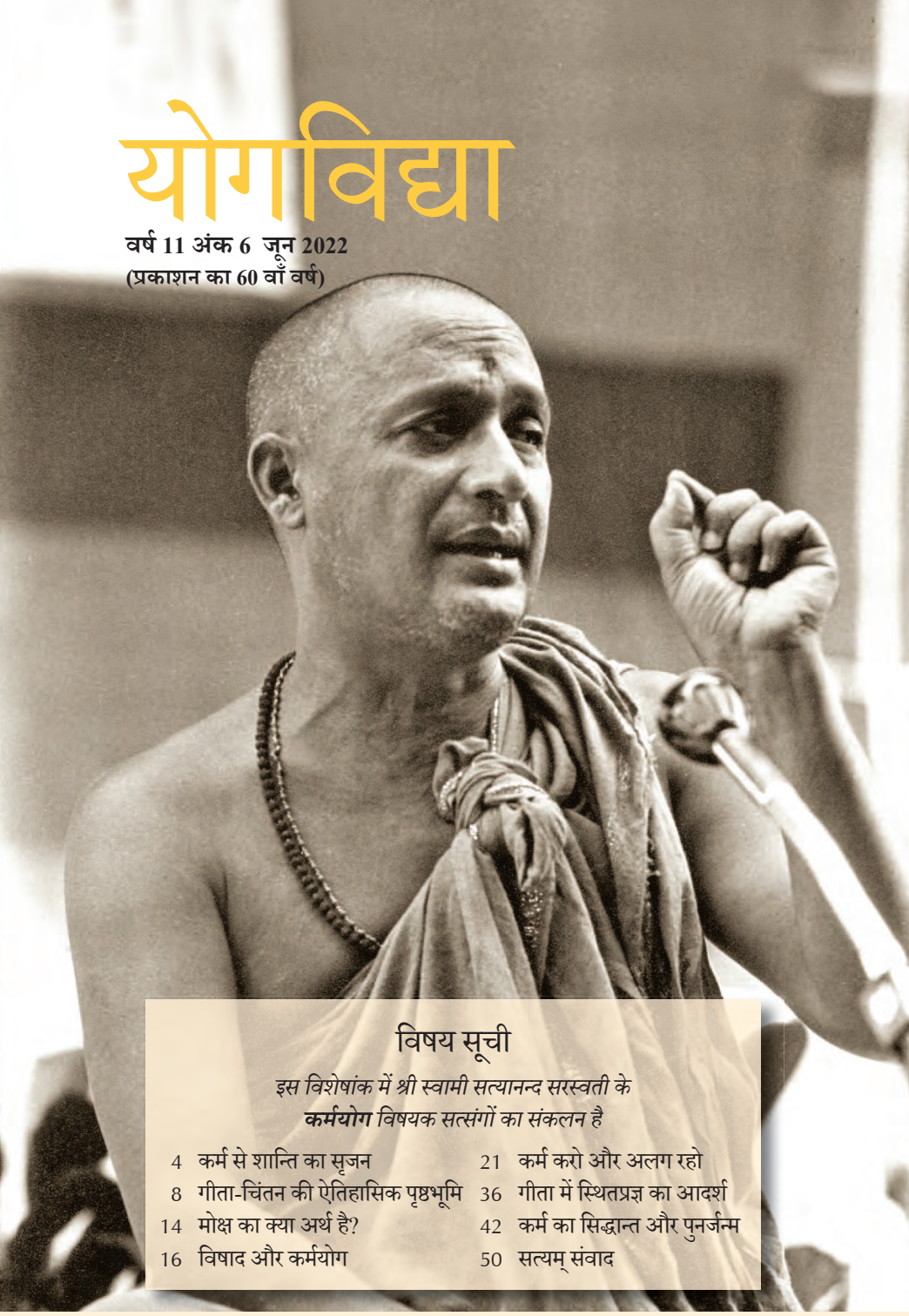

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के ***कर्मयोग*** *विषयक सत्संगों का संकलन है*

4 कर्म से शान्ति का सृजन
8 गीता-चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
14 मोक्ष का क्या अर्थ है?
16 विषाद और कर्मयोग
21 कर्म करो और अलग रहो
36 गीता में स्थितप्रज्ञ का आदर्श
42 कर्म का सिद्धान्त और पुनर्जन्म
50 सत्यम् संवाद

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

कर्म से शान्ति का सृजन

गृहस्थ जीवन एक परीक्षा है। जो इसमें सफलता प्राप्त करता है, वह मुक्त हो जाता है, अन्यथा कोल्हू के बैल की भाँति जीवन-कोल्हू में चक्कर लगाता रहता है। हमारे दैनिक जीवन में प्रतिपल कसौटियाँ आती हैं। हमारे कई मित्र हैं और कई शत्रु भी। क्या हम उन्हें कभी घृणा, द्वेष, ईर्ष्या से नहीं देखते? अरे, इतना ही नहीं, उनके विनाश की चेष्टा में भी हम प्रवृत्त होते हैं।

मनुष्य समाज और विश्व की इकाई है। अगर यह इकाई घर में या समाज में लड़ती रहे, तब समाज में शान्ति कैसे रहेगी? मनुष्य को अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर मानसिक शान्ति धारण करनी चाहिए। मानसिक शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जब क्रोध का दमन करने में हम पूर्णतया सफल हो सकें। विचारों के त्याग से शान्ति उपलब्ध नहीं होती। शान्ति की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। आध्यात्मिकता से मन के आलस्य, प्रमाद आदि का त्याग कर देना चाहिए, तब मनुष्य में नवीन चेतना उद्भूत होगी। समाज के प्रति उदासीन वृत्ति धारण करने से शान्ति संप्राप्त होगी, यह समझना भयंकर भूल है। समाज के कल्याण के लिये जो नया मार्ग स्थापित करता है, समाज की शान्ति के लिए जो नये-नये अनुसंधान करता है, वही शान्ति पाता है। जो अपने पास आने वाले को सुख और शान्ति प्रदान करता है, उसे खुश करने का प्रयत्न करता है, उसे ही सुख और शान्ति प्राप्त होती है।

आध्यात्मिकता की सच्ची परिभाषा क्या है? शान्ति। किसी को तनिक भी कष्ट न देना। आध्यात्मिक, राजनैतिक या सदाचार संबंधी विचारों या कार्यों से यदि हम दूसरों के दिल को दुखाते हैं, तो हमें कभी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। किसी कार्य के करने में यदि आपका उद्देश्य शुभ है तथा दूसरों को शान्ति प्रदान करना ही उसका हेतु है, तो मन की शान्ति अविच्छिन्न रहेगी। भले ही वह कार्य अत्यन्त निम्नकोटि का हो। ध्यान रहे कि बुरे या गलत कामों से हम किसी को भी प्रसन्न नहीं कर सकते। प्रत्येक मनुष्य की प्रसन्नता ही धर्म की सच्ची परिभाषा है। समाज उस व्यक्ति से खुश रहता है जो किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता, किसी को भी कष्ट नहीं देता।

पूज्य स्वामी शिवानन्द जी हमेशा यही उपदेश देते हैं कि दूसरों को खुश रखो। यह बात वे जंगल में जाकर अथवा एकांत में बैठकर नहीं समझाते,

बल्कि समाज में मनुष्यों के बीच रहकर ही समझाते हैं। आपके सिद्धान्त से यदि किसी व्यक्ति की प्रसन्नता पर आघात पहुँचता है, तो आपको उस सिद्धान्त को अवश्य तिलांजलि दे देनी चाहिये। स्वामीजी मानते हैं कि साधु-संन्यासियों को फूलों की माला या पादपूजा की कोई आवश्यकता नहीं, लेकिन साथ ही उन्होंने प्रेम और भावना का वास्तविक मूल्य पहचाना है। अगाध श्रद्धा से लोग जब भावना का दीप जलाकर, प्रेम पुजापा से उनके पादपद्म की पूजा करना चाहें तो क्या स्वामीजी उनकी कोमल भावना पर कुठाराघात करें? ऐसे अवसरों पर आध्यात्मिक सिद्धान्तों को अलग रखना होगा। ऐसा करने से किसी की भी हानि नहीं होती, वरन् लाभ ही होता है। वह लाभ है औरों की खुशी और आनन्द। यही आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप है।

एक दिन एक भिखारी हमारे पास आया और कम्बल माँगने लगा तो किसी ने कहा कि पिछले साल ही तो कम्बल दिया था, आज फिर क्यों कम्बल माँगने आ गए? श्री स्वामीजी कहने लगे, 'भाई, तुम्हें कम्बल नहीं देना है तो न सही, किन्तु उस भिखारी का अनादर व अपमान न करो। उसे शान्ति प्रदान करना तुम्हारा कर्तव्य है। उसके साथ पूर्ण शान्ति से व्यवहार करो।' शान्ति और आनन्द को अपने जीवन में व्यवहृत करने के असंख्य मौके प्रतिदिन आते रहते हैं, किन्तु हम उन कसौटियों पर कितनी बार खरे उतरते हैं? यह संसार एक स्कूल है, जहाँ हम स्वानुभव तथा दूसरों की गवेषणा से बहुत कुछ सीख सकते हैं। यहाँ असंख्य साधुओं ने मनुष्यों के मध्य रहकर ही अनेक अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं।

जनसाधारण की यह मान्यता है कि साधुओं को किसी चीज का झंझट नहीं। गृहस्थ तो झंझट में उलझे हुए हैं और इसीलिए वे ही जानते हैं कि संसार सत्य है या झूठ। साधुओं को और काम ही क्या होता है? श्री स्वामीजी ने अपने आश्रम की स्थापना ऐसे स्थान पर करके वास्तविक जीवन द्वारा संसार के इन प्रश्नों का उत्तर दिया है। आश्रम की स्थापना ऐसे स्थल पर हुई है, जहाँ सभी प्रकार के लोग आते हैं, सभी सांसारिक झंझटों को झेलना पड़ता है। श्री स्वामीजी के उच्च जीवन और आदर्श व्यवहार से आकृष्ट होकर भारत के कोने-कोने से लोग उनके दर्शनार्थ वहाँ पधारते हैं। कहाँ-कहाँ से लोग आकर वहाँ निवास करते हैं।

हम आज संन्यासी वेश में आपके सामने हैं। स्वामीजी ने हमें यह सिखाया कि संन्यासी होते हुए भी कार्यरत रहो। स्वयं स्वामीजी ब्रह्ममुहूर्त्त में चार बजे से लेकर रात्रि के ग्यारह बजे तक काम करते हैं। आश्रमवासियों को अत्यधिक कार्यभार के कारण कभी-कभी जप, ध्यान, कीर्तन इत्यादि के लिए खास समय निकाल कर साधना करने के लिए भी अवसर नहीं मिलता। स्वामीजी का कहना है कि मन और शरीर को तनिक भी विश्राम न दो। मन को स्वच्छन्द बनकर विचरण करने न दो। उन्हें सदा कार्यव्यस्त रखो, जिससे कि दोनों थक जाएँ, किन्तु इसके साथ ही आध्यात्मिकता की भावना वैसी-की-वैसी अविच्छिन्न बनी रहे। इसमें जरा भी अन्तर न आये। गृहस्थों की चुनौती का कितना सुन्दर है स्वामीजी का यह उत्तर!

संन्यासी सुबह से शाम पर्यन्त कार्य करते रहने पर भी अपने आध्यात्मिक प्रवाह से क्षण भर भी विमुक्त नहीं होता। सांसारिक पदार्थों की न तो वह

चाह करता है और न ही उनके पीछे भागता है। वह तो प्रलोभनों से मुख मोड़ कर आगे हो चलता जाता है। गृहस्थों के उन कार्यों का क्या उपयोग जिनमें आध्यात्मिकता का समावेश न हो? स्वामीजी ने व्यावहारिक जगत् में रहकर विश्व को एक अनूठा अनुसन्धान दिया है। स्वामीजी के जीवन पथ का अनुसरण करने वालों को धर्म के साथ कभी टक्कर नहीं लेनी पड़ती। धर्म और आध्यात्मिकता की पटरियों पर जब हमारे जीवन की रेलगाड़ी चलती है, तभी वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकती है। जीवन ने यदि इनमें से किसी को भी समुचित रूप से स्वीकार नहीं किया, तो जीवन की रेलगाड़ी को टक्कर खानी पड़ती है। फलत: मिलती है अशान्ति। इसीलिए प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय को ही योग कहते हैं। परमार्थ और व्यवहार के संयोग का नाम है धर्म।

इस प्रकार के जीवन में शत्रु और मित्र का भेद नहीं होता और न वहाँ ऊँच और नीच का भेद होता है। समाज से किसी भी व्यक्ति का हमें बहिष्कार नहीं करना चाहिए। जो भावना हम एक के लिए रखते हैं, वही हमें दूसरों के लिए भी रखनी चाहिए। जीवन और धर्म, परमार्थ और व्यवहार यदि एकरूप होकर नहीं चलते, तो हमें ऐसे जीवन और ऐसे व्यवहार को परिष्कृत करना होगा, अन्यथा वे आपस में टकराकर अशान्ति का सृजन करेंगे।

– 27 जनवरी 1956, पाटन, गुजरात

गीता-चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

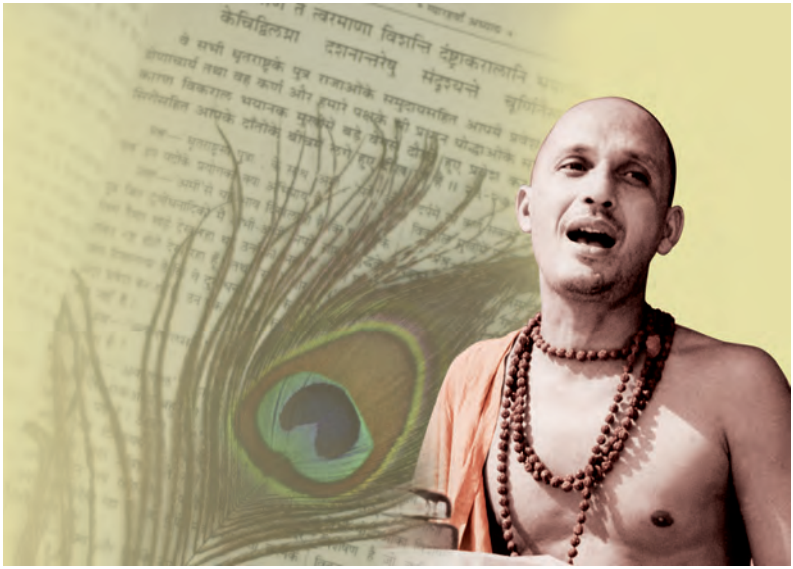

महाभारत के उद्योग पर्व में श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद के रूप में सात सौ श्लोकों की एक गीता है, जिसके रचयिता श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास जी हैं। कुछ लोगों का मत है कि जिस समय भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता कही और जिस समय व्यास जी ने उसे लिखा, उन दोनों के बीच समय का कुछ अन्तर रहा है। गीता लिखते समय व्यास जी के ऊपर देश, काल और परिस्थिति का विशेष प्रभाव था। यही कारण है कि गीता में इसकी छाप दिखाई पड़ती है। तत्कालीन समाज की संदिग्ध अवस्थाओं को सुधारने के लिए उन्होंने महाभारत में इसे जोड़ा। गीता न तो युद्ध गाथा है और न ही धर्म-पुस्तक। यह है मानव जीवन का दैनिक कार्यक्रम।

भारतवर्ष युग-युग से अध्यात्म-प्रधान देश रहा है। यहाँ का सामाजिक जीवन सुलझा हुआ था। आवश्यकतायें कम थीं और आराम ज्यादा। सभ्यता का पाखण्ड भी नहीं था। ऐसे स्वस्थ ग्राम्य जीवन में रहने वाले लोगों का अध्यात्म की ओर झुकना स्वाभाविक ही था। लेकिन लगातार इस एक जैसी अवस्था ने यहाँ लोगों को इतना अन्तर्मुख कर दिया कि उनका बाह्य

व्यावहारिक जगत् से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। उन्होंने न तो जीवन के उतार-चढ़ाव ही देखे थे और न उनके सामने कोई आर्थिक समस्या ही थी।

जब आदमी बिना किसी विशेष निर्देश के आध्यात्मिक मार्ग पर बढ़ता है तो उसके मन में एक प्रकार का निष्क्रियतामूलक वैराग्य भाव उत्पन्न होने लगता है। यह वैराग्य सच्चा वैराग्य नहीं होता, बल्कि वह मानसिक आलस्य, कर्म-विमुखता या अकर्मण्यता का छद्म रूप ही होता है। इस प्रकार के मिथ्या वैराग्य से ग्रस्त व्यक्ति पलायनवादी हो जाता है। यही अवस्था निर्देशरहित आध्यात्मिक जीवन बिताने वाले देश और समाज की भी होती है।

बीच-बीच में ऐसे व्यक्ति हुए, जिन्होंने इस प्रकार की नैराश्यपूर्ण आध्यात्मिक दिग्भ्रान्तता के खतरे को देखा और उसका निदान निकाला। उन्होंने आध्यात्मिक और लौकिक जीवन में सामंजस्य की आवश्यकता को समझा। इन मनीषियों में प्रमुखत: तीन के नाम आते हैं। वे हैं वशिष्ठ, वाल्मीकि और कृष्ण द्वैपायन व्यास।

वशिष्ठ जी ने देखा था कि उस काल का समाज इतनी तीव्रता के साथ आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रहा है कि उसे व्यावहारिक जीवन के द्वन्द्व की कोई चिन्ता ही नहीं है। वह केवल परलोक की सोचता है। इस नैराश्यपूर्ण अवस्था को दूर करने के लिए ही उन्होंने रामायण की रचना की, जिसे हम योगवाशिष्ठ भी कहते हैं। इसमें राम को युग-प्रतिनिधि के रूप में रखकर, उनसे उस युग के लोगों के मनोभावों का वर्णन कराया गया है और उसमें उसका निदान भी है विश्वामित्र की वाणी के रूप में। इसमें एक ओर संसार की महान् शक्ति की कल्पना की गयी है और दूसरी ओर कर्म करने की आवश्यकता पर जोर भी दिया गया है।

महर्षि वाल्मीकि के सामने भी यही समस्या थी। उनका ध्येय समाज को आध्यात्मिकता से विमुख करना नहीं, बल्कि लौकिक जीवन को सन्तुलित करना था। उन्होंने श्रीराम को अनन्त शक्तियों से विभूषित महापुरुष के रूप में ग्रहण किया और साथ ही उस युगपुरुष से समाज की मर्यादाओं का पालन भी कराया।

यही अवस्था एक बार फिर प्रश्न बनकर व्यास जी के सामने उठ खड़ी हुई थी। जो अग्निहोत्री थे वे हवन छोड़कर कुछ करना नहीं चाहते थे और जो साधु थे, वे अग्नि छूना ही नहीं चाहते थे। समाज के लोगों को घर-गृहस्थी का काम प्रपंच-सा लगता था। योग, तप, तीर्थ आदि साधनायें सिर्फ मुक्ति के

लिए ही की जाती थीं। वे स्वधर्म का परित्याग कर चुके थे, जीवन के मर्म से विमुख हो रहे थे। यह एक ऐसी परिस्थिति थी, जिसमें आध्यात्मिकता मनुष्य को ऐसा पकड़ती है कि वह उसे ले डूबती है। उसके बाद भौतिकवाद आगे आता है और व्यक्ति या समाज उसमें जकड़ जाता है।

साधारणत: लोग कर्म-त्याग में ही शांति का स्वरूप देखते हैं, लेकिन इसका वास्तविक जीवन से सदा विरोध रहा है। व्यावहारिक जीवन में तो आदमी उस कोयले की खान के मजदूर की तरह है, जो दिन भर कालिख के बीच काम करता है और सन्ध्या-काल में अपने शरीर को धोकर स्वच्छ हो जाता है। मनुष्य को तो अपने आश्रम के अनुकूल आध्यात्मिक जीवन और इन्द्रिय जीवन के बीच समन्वय करना पड़ेगा ही।

गीता के लेखक श्री व्यास जी के सामने भी एक महान् प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। आदमी अपने आध्यात्मिक और लौकिक जीवन के बीच दीवार खड़ी करे या दोनों को साथ लेकर चले? यदि साथ लेकर चलना है तो कैसे?

एक रास्ता यह था कि प्रतिदिन कुछ समय अध्यात्म के लिए निकाला जाए और बाकी समय गृहस्थी के सभी प्रपंचपूर्ण कार्य बेहिचक किये जाएँ, और दूसरा रास्ता था कि दिनभर काम भी किया जाए और साथ-ही-साथ अध्यात्म भी होता रहे।

गीता के अनुसार मनुष्य के आध्यात्मिक और भौतिक नाम से दो जीवन नहीं हो सकते, और एक-दूसरे की अवहेलना भी नहीं की जा सकती है।

सच तो यह है कि कोई भी पूर्ण आध्यात्मिक नहीं हो सकता है। मनुष्य पंचतत्त्वों से बना है जो उसका भौतिक स्वरूप है। उसने चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मनुष्य शरीर पाया है, उन योनियों के संस्कारों की छाप उसके अचेतन मन पर चित्रित है। ऐसी अवस्था में उसके भीतर महत्त्वाकांक्षायें, वासनायें तथा अन्य वांछित और अवांछित संस्कारों का रहना स्वाभाविक ही है। इसलिए, कोई भी व्यक्ति पूर्ण आध्यात्मिक नहीं हो सकता, उसका स्वरूप भले ही आध्यात्मिक हो।

गीता का अर्जुन समाज का प्रतिनिधि है। पहले अध्याय में अर्जुन द्वारा व्यक्त वाणी उस काल के समाज की आवाज है। वहाँ भगवान श्रीकृष्ण एक जाग्रत गुरु के रूप में आते हैं, जिनके सामने एक ऐसे युग का चित्र है जहाँ मनुष्य आवश्यकताओं से पराजित होकर नैराश्यपूर्ण जीवन बिता रहा है। वह सुख चाहता है, पर मिल नहीं पाता। घर छोड़कर संन्यास ग्रहण करना

चाहता है, पर कर नहीं पाता। वैसे ही युग को श्रीकृष्ण ने अपनी अमृत वाणी से सन्देश दिया है।

मनुष्य स्वभावत: अपने जीवन की असफलताओं, आघातों और निराशाओं की याद तो रखता है, पर जीवन की आशायें और सफलतायें आँखों से ओझल रहती हैं। वह जीवन के केवल दोषपूर्ण चित्रों को ही देखता है, उसके सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् को नहीं।

ऐसे व्यक्ति के सामने जीवन का एक ठोस दर्शन उपस्थित करना आवश्यक है। समाज में रहने वाले व्यक्ति का जीवन दर्शन कुछ और होता है, संन्यासी का कुछ और। एक ऐसा भी व्यक्ति होता है जो जीवन के दोनों पक्षों को एक साथ ग्रहण करना चाहता है। उसकी अवस्था 'हसब ठठाई फुलाइब गालू' जैसी होती है। वह आनन्द चाहता है, पर त्याग नहीं। बबूल का पेड़ बोता है और आम का फल खोजता है।

मनुष्य की आकांक्षाओं और उनकी प्राप्ति के बीच बड़ा विरोध है, और रहेगा भी। गीता का रास्ता संसार में अब तक बताये गये मनुष्य हित के सभी रास्तों से भिन्न है। अब तक तो यही कहा गया था कि वैराग्य के बिना शान्ति नहीं हो सकती है।

ऐसे समय में गीता में भगवान श्रीकृष्ण का एक महान् क्रान्तिकारी रूप प्रकट होता है। वे कहते हैं कि त्याग की बात तो दूर रहे, स्त्री, वैश्य और शूद्र भी अपने-अपने कर्मों को दक्षता और निपुणतापूर्वक करके उसी गति को प्राप्त करते हैं, जिस गति को तपस्वी, वैरागी या साधक। मनुष्य को अपने आप से संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं है।

गीता योगशास्त्र है, किन्तु इसका योग महर्षि पतंजलि के योग से कुछ भिन्न है और महान् भी। यह जन-साधारण के लिए अधिक उपयुक्त है। आज तक योग का अर्थ संन्यास से और इन्द्रियों के सहज स्वभाव के दमन से लगाया जाता था, किन्तु गीता इसका समर्थन नहीं करती। सांसारिक जीवन में विषय-विमुख होने से मनुष्य की प्रतिभायें कुण्ठित हो जाती हैं। इन्द्रियों का भी विधिवत् विकास जरूरी है। इन्द्रियों में भी प्रतिभा होती है, जिसका सदुपयोग करना चाहिए। साधना ऐसी होनी चाहिए कि इन्द्रियाँ अपविषयों से दूर तो रहें, पर उनकी अपनी प्रतिभा नष्ट न हो। जब इन्द्रियाँ मनुष्य के मन के साथ सामंजस्य स्थापित करती हैं तो आदमी महान् हो जाता है।

सूरदास, तुलसीदास और वाल्मीकि जैसे हमारे अनेक संतों के पास शक्तियाँ थीं, पर उन्होंने केवल अपनी इन्द्रिय-शक्ति को विषयांतर किया, उसकी सहज प्रतिभा का सदुपयोग किया। इन्हीं के सहारे कितने ही सहज गुणों का अर्जन किया, जैसे कल्पना, निर्भीकता और परिस्थितियों को पहचानने की क्षमता। संत का संग मिला, साधना की और जीवन की धारा बदल गयी। साधना से शक्ति मिलती नहीं है, वह तो सब के भीतर स्वयं है ही। केवल दबी हुई प्रतिभा ऊपर आ जाती है और उसकी धारा बदल जाती है। इन्हीं शक्तियों को विकसित करने का उपाय गीता में है। जिसके शरीर, मन और इन्द्रियाँ सबल हैं, उसी को आत्म-दर्शन हो सकता है। कमजोर व्यक्ति चाहे कितना ही विद्वान् क्यों न हो, उसे आत्म-दर्शन नहीं हो सकता।

गीता हमें दुनिया से विमुख नहीं करती। यदि इसका यही प्रयोजन होता तो भगवान श्रीकृष्ण के सामने अर्जुन के स्थान पर कोई और ही व्यक्ति होता। जहाँ तक आत्म-संयम और सात्त्विक आहार का प्रश्न है, ये साधना के लिए जरूरी तो हैं, पर इनका स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसकी क्षमता के अनुकूल होना चाहिए। जो एक के लिए सात्त्विक है, दूसरे के लिए तामसिक भी हो सकता है। साधक को ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, भय आदि नकारात्मक भावनाओं से दूर रहना चाहिये। यहाँ निर्भीकता से तात्पर्य किसी

आतंकवादी व्यक्ति की प्रवृत्ति से नहीं है, बल्कि निर्भीक व्यक्ति दूसरों को अभय प्रदान करता है।

महाभारत की लड़ाई आज भी प्रतिदिन हमारे जीवन में हो रही है और हम अपनी द्वन्द्वात्मक प्रवृत्तियों से लड़ रहे हैं। शान्ति प्राप्त करने के लिए हमें यह लड़ाई तो लड़नी होगी। शान्ति जीवन का परम लक्ष्य है, पर उसकी प्राप्ति के लिए किसी विशेष कष्ट साध्य त्याग या तप की आवश्यकता नहीं, बल्कि अपने बारे में जो गलत धारणायें हैं, उन्हें सोचना छोड़कर, अपने कर्मों को निष्ठा और निपुणता के साथ यथास्थान करना है।

आज भारतवर्ष की भी कुछ ऐसी अवस्था है जो गीता-काल में थी और आवश्यकता है कि हम गीता के संदेश को अपने जीवन में उतारने का निष्ठा के साथ प्रयास करें।

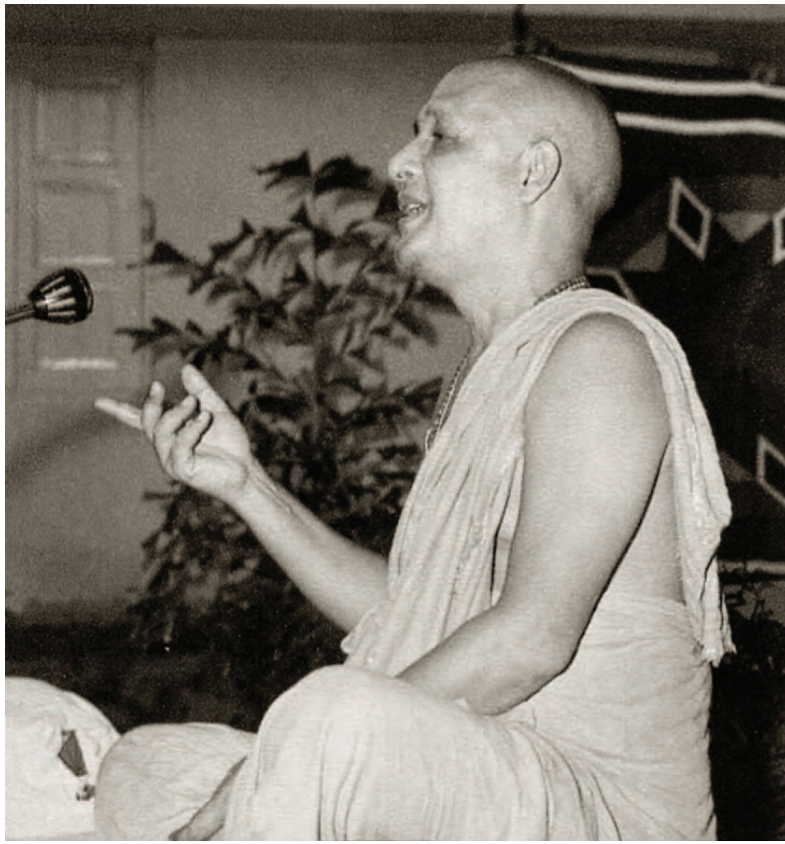

मोक्ष का क्या अर्थ है?

किताबों में, कविता और साहित्य की भाषा में तो बहुत कुछ लिखा हुआ है कि मोक्ष का मतलब जन्म-मरण के चक्र का नाश होता है, यह होता है, वो होता है, लेकिन अगर हम केवल शब्द के अर्थ को देखें तो मोक्ष का मतलब होता है मुक्ति या छुटकारा, और उसका विपरीत होता है बन्धन। अब हमें यह निर्णय करना है कि बन्धन किसका है और मुक्ति किससे प्राप्त करनी है।

अगर ध्यान से सोचेंगे तो सबसे बड़ा बन्धन मन की वृत्तियों का है। हम इन वृत्तियों के वशीभूत होकर अनचाहे काम भी करते हैं। इसका तात्पर्य हुआ कि हम कैदी हैं मन के। कैदी जेल में रहता है, वह निकलना चाहता है, मगर निकल नहीं पाता, क्योंकि वह बन्धन में है। वह चाहता है कि मैं बाहर जाऊँ, मगर उसने ऐसा कर्म किया है जिसके कारण उसे सजा मिली है। इसी प्रकार जीवात्मा ने भी कुछ कर्म किया है जिसका फल उसे भोगना है, यह निश्चित है।

बन्धन का मतलब हुआ कि मनुष्य अपने कर्मों के कारण बंधा हुआ है और मोक्ष का मतलब हुआ कर्म बन्धन से छुटकारा। जब मनुष्य को कर्म बन्धन से मुक्ति मिलती है तब उससे निष्काम कर्म होता है। मगर यह निष्काम कर्म होगा कब? आप निष्काम कर्म करना चाहते हैं तो आपको उससे फायदा होने की बात नहीं सोचनी चाहिए, बल्कि निष्काम कर्म से दूसरों को फायदा

होना चाहिए। सकाम कर्म का अर्थ होता है कि जो कर्म मैं करता हूँ, उसका फल मुझे मिलना चाहिए, जबकि निष्काम कर्म का अर्थ है कि मेरा मन कर्म से मुक्त रहना चाहिए और यह तभी संभव है जब चित्तवृत्तियाँ शुद्ध और शांत हों। यद्यपि जन्म-मरण एक चक्र है जिससे मनुष्य बंधा है और इससे मनुष्य को तकलीफ भी होती है, मगर जिसने निष्काम कर्म का सम्पादन करके अपने मन को वश में कर लिया है, ऐसे व्यक्ति को एक ही नहीं हजारों बार जन्म लेना पड़े तो भी कोई कष्ट नहीं होता। वह सदैव कर्म बन्धनों से मुक्त रहता है।

दूसरी तरफ सकाम कर्म करने वाले को कर्मों का बन्धन होता है। उसे हर्ष-विषाद, सुख-दुःख होता है। अतः हर साधक को साधना करनी चाहिये जिससे मन पर कुछ संयम और अनुशासन आ जाय। तब साधक की दृष्टि और भावना धीरे-धीरे शुद्ध होती जाएगी। उसके बाद यदि वह संसार में कर्म करेगा तो उसके सभी कर्म ऊँचे और पवित्र होंगे। सामान्य लोग संसार में फँसे हुए हैं, उनके बन्धु, रिश्तेदार आदि हैं, वे लोग कितना भी निष्काम कर्म करने की कोशिश करें, पर सकाम भावना आ ही जाती है। परन्तु पचास-साठ की उम्र के बाद लोग आसानी से निष्काम कर्म कर सकते हैं, क्योंकि उस उम्र में कोई कर्तव्य शेष नहीं है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि निष्काम कर्म करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होनी चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि अपने कर्म में कुशलता लाना योग है, निष्काम कर्म की यह पहली सीढ़ी है –

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥2.50॥

इसके बाद दूसरी सीढ़ी आती है, वह है समत्वम्। समत्वम् का अर्थ होता है कि कर्म का कोई भी फल हो, शुभ या अशुभ, उसके प्रति मन में राग-द्वेष उत्पन्न न हो। उदाहरण के लिए अगर व्यापार अथवा खेती में सफलता मिली तो मन हर्षित होता है और यदि हानि हुई तो मन में विषाद होता है। फल के प्रति यह जो हर्ष और विषाद की भावना है, उसे रोकने को ही समत्वम् कहते हैं।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥2.48॥

कर्मों में कुशलता और जीवन में समता ले आने से मनुष्य संसार में रहते हुए भी मोक्ष पा लेता है।

विषाद और कर्मयोग

विषाद क्या है, क्यों होता है? योग में इसे ठीक करने का क्या उपाय है?

जब बिजली का वोल्टेज गिर जाता है, तब बल्ब बहुत मन्द जलता है। उस वक्त अगर एयरकन्डिशनर चल रहा हो तो फ्यूज उड़ जायेगा या एयरकन्डिशनर का कन्डेन्सर गर्म होकर जल जायेगा। इसी तरह से जब मन पर ज्यादा भार पड़ता है तब विषाद या डिप्रेशन होता है।

शरीर पर ज्यादा भार हो तो शारीरिक तनाव होता है, मन पर ज्यादा भार हो तो मानसिक तनाव होता है, और भावनाओं पर ज्यादा भार हो तो भावनात्मक तनाव होता है। ये तीन प्रकार के तनाव हैं। भावनात्मक तनाव वे होते हैं जिनसे सुख या दुःख होता है। कोई मर गया, कोई पैदा हो गया, किसी की शादी हो गयी, कोई विधवा हो गयी – ये सब भावनात्मक तनाव लाते हैं। मानसिक तनाव होता है – सोचना, सोचना और सोचना। अरे! थोड़ी देर सोचना बन्द करो। थोड़ी देर मोटर को बंद करो, पर नहीं हो पाता है। यह मोटर चलती है तो चलती ही जाती है, बिना ब्रेक की गाड़ी की तरह, बुरा नहीं मानना।

लोगों को सोचना शुरू करना नहीं आता और सोचना बंद करना भी नहीं आता। आप सोचते हो क्योंकि आप असहाय हो। आप सोचना जानते नहीं हो, आपके मन में विचार आ रहे हैं और आते ही जा रहे हैं। आपको मालूम नहीं है कि क्यों आ रहे हैं और कहाँ से आ रहे हैं। आप उन्हें रोकना चाहो तो रुकते नहीं हैं। आप में विचारों को शुरू करने की और विचारों को बंद करने की, ये दोनों क्षमताएँ होनी चाहिए। आपके पास न विचार शुरू करने की क्षमता है और न विचार रोकने की। स्कूल-कॉलेज के लड़के पढ़ते हैं विज्ञान और सोचते हैं फिल्म एक्टर के बारे में। अरे! यदि तुम पढ़ने की बात सोच रहे हो तो उसी को सोचो, निरंतरता लाओ उसमें, पर नहीं, बीच-बीच में मन भाग जाता है। मन की ये चीजें बहुत गहराई में जाती हैं, इसीलिए फिर शारीरिक तनाव भी होता है।

आजकल लोग बहुत ज्यादा खाते हैं या बहुत कम खाते हैं या रात को 10 बजे खाते हैं। पहले गाँवों में 5-6 बजे तक खाना खाकर लोग ढोलक बजाने लगते थे और 8 बजे तक सो जाते थे, गाँव में सुनसान हो जाता था। जिस देश में लोग शाम को 5 बजे खाना खाया करते थे, वहीं अब शहरों में लोग 10 बजे रात को खाते हैं। अब रात को 10 बजे खाने से आपके शरीर के पाचन तंत्र पर भार तो पड़ेगा ही। इसके अलावा तनाव के अन्य कारण भी हैं, जैसे प्रदूषण और विषाक्त पदार्थ। मोटर गाड़ी के इंजन का धुँआ, चिमनियों से निकलने वाला धुआँ और जमीन के नीचे सेप्टिक टैंक से निकलने वाली गैस – ऐसी चीजें भी शरीर, मन और भावनाओं को तनाव देती हैं और हमारे ऊपर भार बढ़ता है।

भावना पर चोट

हमारे शरीर में दो मुख्य अंग हैं, एक है दिमाग और दूसरा है दिल। दिल पर भार पड़ता है दिमाग की वजह से और दिमाग पर भार पड़ता है दिल की वजह से। दिल और दिमाग, कार्डियो-वास्कूलर और सेरेब्रल, इन दोनों प्रणालियों के बीच संतुलन कायम करने की जरूरत है। जितना कम सोचोगे, जितना हल्का सोचोगे, जितना ढंग से सोचोगे, उतना ही तुम्हारे कार्डियो-वास्कूलर सिस्टम पर अच्छा असर होगा। लेकिन अगर जल्दी-जल्दी सोचोगे, डर करके सोचोगे, गुस्से में सोचोगे तो तुरन्त दिल पर उसका असर होगा। याद रखना कि शरीर से ज्यादा असरदार मन है।

लोग मन को तो कुछ समझते ही नहीं हैं, पर शरीर को सब समझते हैं। जैसे किसी के हाथ में चोट लगी तो उसने डॉक्टर को दिखाया, एक्स-रे कराया, दवा ली, मगर दिल को चोट लगी तो उसने क्या किया? भावनात्मक चोट भी तो चोट होती है न? उसका कोई उपाय हमारे पास नहीं है। शारीरिक चोट लगती है तो पता चलता है, परंतु भावनाओं पर जब चोट पड़ती है तो तुम्हें मालूम ही नहीं कि वह भी एक चोट है और वह चोट रोज पड़ती है। उससे एक दिन तुम्हारी भावनाएँ बीमार पड़ जाती हैं और मर भी जाती हैं। क्यों मर जाती हैं? इसलिये कि चोट लग गयी। शरीर में चोट लगी तो आदमी उसको ठीक कर लेता है, मगर किसी आदमी के दिल पर चोट लगती है तो वह मर भी जाता है।

भावनाओं के बहुत मर्म-स्थान होते हैं और उन मर्म-स्थानों पर चोट लगने के बाद बहुत-से लोग आत्महत्या कर लेते हैं, बहुत-से लोग शराब का नशा करने लग जाते हैं, बहुत-से लोग चोरी, डकैती, बदमाशी, खून-खराबा करने लग जाते हैं। आज समाज में आतंक है, चोरी है, डकैती है, ये एक ऐसे समाज के लक्षण हैं जो भौतिकवादी है। चोरी हो रही है, कोई छोटी लड़की को ही लेकर भाग रहा है, कोई किसी को मार रहा है, यह तो रोज की बात है। अखबारों में यही सब तो होता है। उसका मुख्य कारण है कि आज मानव समाज केवल पदार्थ को, स्थूल वस्तु को, माया को ही स्वीकार करता है।

शरीर को चोट लग गई तो उसके लिए दवाई है। कैंसर हो गया तो दवाई है, तपेदिक हो गया दवाई है, सिरदर्द हो गया दवाई है, लेकिन क्रोध की दवाई किसी ने निकाली है क्या? अरे! क्रोध भी तो एक बीमारी ही है। इसे दुर्गुण कहकर छुट्टी पा जाओगे क्या? क्रोध शरीर की बीमारी नहीं, यह मन की बीमारी है, भावना की बीमारी है और यह एक ऐसी कठिन बीमारी है कि बाद में यह शरीर में थ्रोम्बोसिस लाती है, कैंसर लाती है, पेप्टिक अल्सर लाती है, दमा, गठिया और मधुमेह लाती है। कहने का मतलब यह कि जितनी भी शारीरिक बीमारियाँ हैं, वे प्राय: बीमार भावना और बीमार मन से होती हैं।

गीता में विषाद-निवारण का उपाय

विषाद में, डिप्रेशन में आपका मन, आपकी भावना बीमार होती है, उसको चोट लगी है। इसलिए डिप्रेशन का मामला इतना सरल नहीं कि जिसको दवाई से ठीक कर सकें। जब कभी डिप्रेशन होता है तो उसके लिए एक विधि होती है। आप लोगों ने गीता पढ़ी होगी, उसके पहले अध्याय का नाम है 'अर्जुन

विषाद योग'। विषाद से ही योग शुरू होता है क्योंकि जब तुम्हें विषाद होता है तब तुम अपने मन को ढंग से व्यवस्थित करने की कोशिश करते हो।

अर्जुन को जो विषाद हुआ उसके लक्षण क्या थे? अर्जुन ने कहा, 'मेरा दिमाग घूम रहा है, मेरे शरीर से पसीना निकल रहा है, मेरे रोम खड़े हो रहे हैं, गाण्डीव मेरे हाथ से सरक रहा है, मैं खड़ा नहीं हो पा रहा हूँ, मुझे सब कुछ नकारात्मक मालूम पड़ रहा है।' डिप्रेशन के यही लक्षण हैं – पसीना आना, शरीर का थरथराना, हाथ में कोई चीज पकड़ नहीं पाना और मन में नकारात्मक विचार आना। जैसे बच्चा थोड़ा-सा बीमार पड़ा तो सोचते हैं कहीं मर नहीं जावे। लड़के को स्कूल से आने में देर हो गयी तो सोचते हैं, 'अरे! कहीं एक्सीडेन्ट नहीं हो गया हो उसका।' अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से कहा कि मुझे कोई अच्छी चीज दिखती ही नहीं है, कोई चीज मुझे सकारात्मक नहीं दिखती –

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥1.31॥

घर में आज पैसा आ गया, बहुत अच्छा मकान बन गया तो अब डर लगता है कि कहीं टूट न जाय। यह डिप्रेशन की निशानी है। विषाद मनुष्य

के जीवन के मूल में है। इस विषाद से उठने के लिये गीता का दूसरा अध्याय है – सांख्य योग।

सांख्य का मतलब होता है, तुम्हें अपने जीवन के बारे में हर एक चीज का ठीक तरह से विश्लेषण करना चाहिए – *सम्यक् रूपेण आख्यानम्।* सांख्य में 'ख्य' का मतलब ज्ञान होता है और सम् का मतलब होता है अच्छी तरह से, तो सांख्य का अर्थ हुआ 'खूब अच्छी तरह से सोच लो कि क्या हो रहा है।' मेरी पत्नी, बच्चा, पैसा, नौकरी, मेरा चाल-चलन, मेरी प्रतिक्रिया, मेरा ससुराल, सब विस्तार से पता लगाओ और उसके बाद कर्मयोग करो।

कर्मयोग का मतलब होता है कि जो भी काम तुम्हारा है चाहे दफ्तर में या दुकान में, उसे पसीना बहाकर करो, ईमानदारी से करो। अपने लिये बेईमानी मत करो, क्योंकि जो काम तुम दिन में कर रहे हो वह रुपये के लिये नहीं है, यह तो पक्की बात है। जो काम तुम दफ्तर, दुकान या स्कूल में करते हो वह पैसे के लिये नहीं है। अगर आपको दो हजार रुपये महीना दे देते हैं और कहते हैं कि आप घर में बैठे रहो तो आप पाँच दिन में परेशान हो जाओगे।

आप काम करते हैं अपने लिए, अपने मन और दिमाग के लिये। यकीन नहीं आता तो दस लाख बैंक में रखो और घर में बैठे रहो दिनभर। देखोगे कि पाँच दिन में दिमाग खराब हो जायेगा। कहोगे, 'अब कहीं घूमने जाना चाहिए, यहाँ अब मन नहीं लगता, बड़ा बोर लग रहा है।' इसका मतलब यह होता है कि कर्म और कर्मयोग जीवन का एक आवश्यक साधन है। चाहे तो अपने परिवार के लिये काम करो, चाहे तो दूसरे के परिवार के लिये काम करो, चाहे गरीबों के लिये काम करो या किसी और के लिये काम करो, मगर उसमें पैसे का ख्याल नहीं रखकर अपने विकास का ख्याल रखना चाहिए।

अर्जुन को डिप्रेशन हुआ था, यह एक स्थिति है और गीता ने उस डिप्रेशन का जो निर्णय दिया वह सब लोगों के लिए है। पहले सब चीजों का अच्छी तरह से विश्लेषण कर लो और उसके बाद किसी काम में मन लगाओ। जब काम में खूब मन लग जाता है और उससे जब लगाव होने लगता है तो उस लगाव को तुरन्त काट दो। काम करते रहो पर लगाव को काट दो। कभी-कभी हम लोग इतना काम करते हैं कि उससे बहुत लगाव हो जाता है और उसकी वजह से भी ब्रेकडाऊन होने लगता है। तब उसके लिए अभ्यास करो कि कैसे हम काम करें और अपने को उस काम से अलग रखें।

– 16 जून 1987, योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र, मुंगेर

कर्म करो और अलग रहो

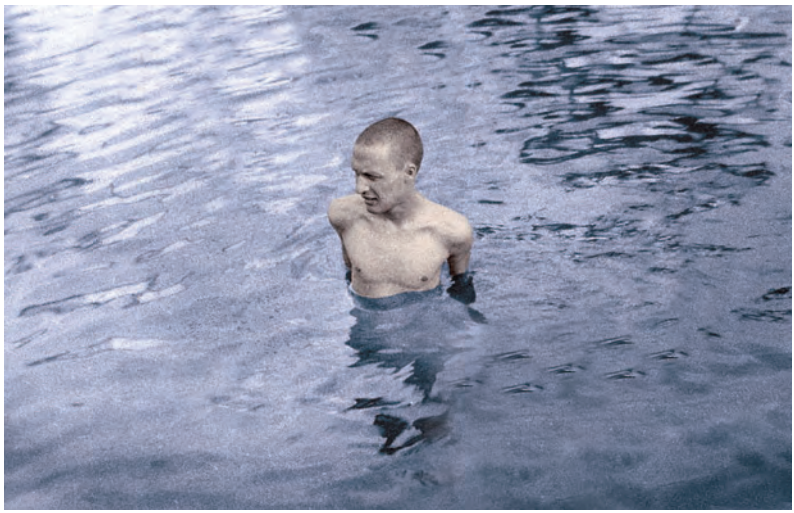

जिस प्रकार समुद्र में असंख्य रत्न हैं, पृथ्वी पर असंख्य वनस्पतियाँ हैं, उसी प्रकार गीता में ज्ञान का अनन्त भण्डार है। जीवन को सही रास्ते पर ले चलने के लिए हर एक आदमी के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री है। जिस तरह गोताखोर समुद्र में गोता लगाकर या वनस्पति-शास्त्री वन-पर्वतों में घूमकर अपने मन के अनुकूल मोती और वनस्पतियों को ढूँढते हैं, उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के लिए जो कुछ भी चाहिए, उसे गीता में से खोज निकालना चाहिए।

किसी को जीवन का सीधा रास्ता मालूम नहीं है, सब लोग भटक रहे हैं, सब दु:खी हैं। जिनके जीवन में पीड़ा है, तकलीफ है, ऐसे लोगों के कल्याण के लिए इस गीता-शास्त्र की रचना हुई है। गीता दो रास्ते बतलाती है, एक है प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा है निवृत्ति मार्ग। गीता में कहा है –

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥3.3॥

प्रवृत्ति मार्ग सबके लिए है और निवृत्ति मार्ग कुछ थोड़े से लोगों के लिए है। कर्म में प्रवृत्त होना, संसार के कार्यों में लगना, विषयों के साथ सम्पर्क स्थापित करना, यही प्रवृत्ति मार्ग है। जहाँ विषयों से आसक्ति न हो वह निवृत्ति मार्ग है।

प्रवृत्ति के मार्ग में बहुत कष्ट हैं। जब तुम संसार में अपने को फँसाते हो, जब संसार के कर्मों में अपने को लिप्त रखते हो, तब तुम्हारे और संसार के बीच जो सम्बन्ध या आसक्ति होती है, उससे व्यथा, दु:ख, विषाद आदि की उत्पत्ति होती है। व्यक्ति और कर्म के सम्बन्ध गहरे हो जाने से एक तीसरी चीज की उत्पत्ति होती है जिसको कहते हैं विषाद, दु:ख, क्लेश या तकलीफ। यह सारी दुनिया का नियम है। जहाँ कर्म के साथ तुम्हारा सम्पर्क होगा, जहाँ प्रवृत्ति के साथ तुम्हारा रिश्ता होगा, वहाँ दु:ख होगा। क्यों होगा दु:ख? गीता के एक श्लोक में स्पष्ट कहा गया है – *कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन* – मनुष्य का कर्म में अधिकार है, फल में उसका कोई अधिकार नहीं। मगर जब मनुष्य कर्म करता है तब फल की इच्छा से करता है। बस, यही दु:ख की जड़ है। फल तीन प्रकार के होते हैं – जो तुम चाहते हो, जो तुम नहीं चाहते हो और तीसरा इन दोनों का मिश्रित फल – *अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मण: फलम्*। यदि फल में तुम्हारा अधिकार है तो इन तीनों फलों को भोगने के लिए तुम्हें तैयार रहना चाहिए।

प्रवृत्ति मार्ग में चलने वाले संसार के प्राणियों को प्रवृत्ति के साथ एक और गुण की उपासना करनी चाहिए। वह गुण है फलाकांक्षा का त्याग, जिसे कहते हैं अनासक्ति। उसी को सारी गीता में समझाया गया है। संन्यास, राजयोग और भक्तियोग को समझाते समय श्रीकृष्ण की एक ही आवाज है – अनासक्ति। इस अनासक्ति को हमेशा लोगों ने गलत समझा है। अनासक्ति का मतलब लोग लापरवाही या गैर-जिम्मेदारी से लगाते हैं। किसी का कुछ नुकसान हो गया तो लोग कहते हैं, 'होने दो, हम तो अनासक्त हैं, हमें उससे क्या', पर यह गलत दृष्टिकोण है।

अनासक्ति का वास्तविक तात्पर्य

अनासक्ति एक गतिशील त्याग है, जिसमें कर्म है, पर कर्म का फल नहीं है; जिसमें वस्तु है, मगर वस्तु के प्रति मोह नहीं है; जिसमें व्यक्ति है, घर है, परिवार है, समाज है, राष्ट्र है, लेकिन उससे उत्पन्न होने वाला जो फल है वह मेरा नहीं है। यही अनासक्ति है।

अनासक्ति को ठीक ढंग से समझने के लिए मैं दो व्यक्तियों की कथा सुनाता हूँ। एक का नाम था लल्लू महतो और दूसरे का कल्लू महतो। दोनों सगे भाई थे। एक दिन ये लोग बाजार गये और वहाँ से आम की छोटी-छोटी

दो सौ कलमें खरीदकर लाये। उन्होंने उन आम की कलमों को खेत में रोप दिया। रात को लल्लू अपने कमरे में बैठा और सोचने लगा, 'बड़ा अच्छा है, पचास-साठ कलमें लगाई हैं, पाँच साल में आम मिलेंगे। फिर उनको बाजार में बेचेंगे, फिर उनसे इतना रुपया मिलेगा। सातवें साल इतना रुपया होगा।' इस प्रकार वह बेचारा रात के एक बजे तक सोचता रहा। उसने आम पैदा भी कर लिए, बाजार में बेच भी आया। उसने दो-चार ट्रक भी मोल ले लिए, उसने आमों की निर्यात कम्पनी तक बना ली। आयकर विभाग से पैसा कैसे छिपाना चाहिए, वह भी उसने सोच लिया।

अगले दिन सबेरे जब वह उठा और अपने खेत का चक्कर लगाने गया तो क्या देखा? रात को भैंसों ने उसकी करीब-करीब सभी आम की कलमों

को रौंद दिया था! बेचारे का दिल टूट गया। वह वापस घर आ रहा था कि बेटा रास्ते में मिला और बोला, 'पिताजी, आज स्कूल की फीस का दिन है।' लल्लू झुंझलाकर बोला, 'पैसे पेड़ पर लगते हैं क्या!' और दो चाँटे लगा दिये। अन्दर गया तो पत्नी पर भी बिगड़ने लगा, 'दिनभर कुछ करती-धरती नहीं है, अभी तक चाय भी नहीं लाई है।' गुस्से में उसने गिलास फेंक दिया।

दूसरी तरफ कल्लू महतो था। 'आम के पौधे तो लगा दिये हैं', यही दो-चार बातें सोचकर वह सो गया। सबेरे जब वह उठा तो अपने खेत की तरफ गया। उसने देखा कि उसकी भी चालीस-पचास कलमों को रौंद दिया गया था। तुरन्त वह वापस आया और अपने बेटे-भतीजों को लाकर बची-खुची कलमों को संभालने में लग गया, बाड़ लगाने लगा।

फलाकांक्षा के, सुख-दु:ख के ये दो उदाहरण मिलते हैं। मनुष्य का कर्म के साथ, कल्पना के साथ, जीवन की योजनाओं और तमन्नाओं के साथ कितना गहरा सम्बन्ध होना चाहिए, यह प्रत्येक व्यक्ति को जानना जरूरी है। जो व्यक्ति इसको नहीं जानते हैं, वे हमेशा दु:खी रहते हैं। गीता में इस बात को बिल्कुल स्पष्ट रूप से बतलाया है कि अनासक्ति का अर्थ कर्म का त्याग नहीं होता है। अनासक्ति का अर्थ होता है कि कर्म से उत्पन्न होने वाले फलों का जो हमारे दिमाग पर असर होता है, उस असर से हम अपने को अलग रखें।

गीता हम लोगों के सामने रोशनी की तरह रही है। गीता में जो अनासक्ति की शिक्षा दी गयी है, उसमें समझाया भी है कि कैसे अनासक्ति के साथ कर्म करना चाहिए। अब इस पर प्रत्येक व्यक्ति को विचार करना होगा। जब अर्जुन के मन में बड़ी शंका थी, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसको ज्ञान का उपदेश दिया, फिर त्याग का उपदेश दिया। जब कर्म का भी उपदेश दिया तो उसको बड़ा भ्रम हो गया, वह कहने लगा –

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥3.2॥

'कभी कहते हो कर्म करो, लड़ो और कभी कहते हो कर्म न करो। हे कृष्ण, तुम यह जो मिला-जुला, उलझाने वाला व्याख्यान दे रहे हो, वह मेरी समझ में नहीं आ रहा। निश्चित रूप से बतलाओ कि मैं कर्म करूँ या कर्म का त्याग करूँ?' यह प्रत्येक व्यक्ति का प्रश्न है। इस दुनिया में कर्म करना या नहीं करना। घर-गृहस्थी करना कि छोड़ना। शादी करना कि नहीं करना। बाल-बच्चे पैदा

करना कि नहीं करना। स्कूल में पढ़ना कि नहीं पढ़ना। पैसा कमाना कि नहीं कमाना। ये सब प्रश्न व्यक्ति को उलझाये हुए हैं।

श्रेय मार्ग तथा प्रेय मार्ग

दुनिया में दो रास्ते हैं – श्रेय तथा प्रेय। श्रेय महान् और ऊँचा रास्ता है, जबकि प्रेय सुखदायक और आसानी से प्राप्त होने वाला मार्ग है। अर्जुन भगवान कृष्ण से प्रेय मार्ग नहीं माँगता है। वह कहता है कि तुम मुझको जो कुछ भी बतलाओगे, वह इसलिए बतलाओ कि मैं श्रेय को प्राप्त कर सकूँ। जिस रास्ते से होकर मनुष्य को आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है, मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर के चक्कर कटते हैं, मनुष्य की अविद्या का मोतियाबिंद दूर होता है, वही श्रेय का मार्ग है, और प्रेय का मार्ग कौन-सा है? जिस रास्ते पर चलकर बड़ा मजा आता है, वह प्रेय मार्ग है। रसगुल्ला प्रेय मार्ग है। रसगुल्ले में बड़ा मजा आता है, सिनेमा में भी बड़ा मजा आता है। खूब बढ़िया खेल हो, बढ़िया कपड़े हों, सुन्दर साड़ी हो, सोने की चूड़ी हो, टाई-पैन्ट हो, यह प्रेय का मार्ग है।

नचिकेता ने यमराज से जो तीन वर माँगे थे, उनमें से एक वर यह था, 'यमराज! आप तो मृत्यु के इस पार की भी बात जानते हैं और उस पार की भी। आपके पास तो दोनों लोकों का पासपोर्ट है। मुझे यह बतलाइये कि मरने के बाद आत्मा सचमुच जीवित रहती है कि नहीं।'

यमराज ने कहा, 'बच्चे! तुम क्या फालतू प्रश्न पूछते हो। देवता, ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा, सिद्ध-योगी, सब इस प्रश्न का उत्तर खोजते-खोजते हार गये। फिर तुम क्यों पूछते हो?' नचिकेता ने कहा, 'नहीं, मुझे यही वरदान दो, बतलाओ क्या होता है।' उन्होंने कहा, 'बेटा, हम तुम्हें सोना-चाँदी देंगे, घोड़ा-हाथी देंगे, बढ़िया कपड़े देंगे, तुम्हें लोक-लोकान्तरों का साम्राज्य देंगे और तुम्हारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी को भी वह साम्राज्य देंगे, लेकिन यह प्रश्न हमसे मत पूछो।'

तब नचिकेता यमराज से भिड़ गया, 'हे यमराज! आप मुझसे यह क्या कहते हैं? यह सब तो प्रेय है। भोग की जितनी चीजें हैं, वे सब अस्थायी होती हैं। थोड़ी देर तक आदमी उनको ग्रहण करता है और सुख-दु:ख के रूप में उलट कर फेंक देता है। सांसारिक भोग अविनाशी नहीं, नाशवान् है।' यमराज ने फिर उसको समझाया, 'हस्ति, हिरण, जो कुछ चाहिए हम सब तुमको दे देंगे।' लेकिन नचिकेता ने कहा, 'नहीं।'

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर:।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। ज्ञानी प्रेय मार्ग नहीं चाहते हैं और जो अज्ञानी होते हैं वे प्रेय मार्ग को ही चाहते हैं। *धनं देहि, टेलीविजनं देहि* – यह प्रेय का मार्ग है। जो प्रेय के मार्ग में जा रहे हैं, वे रो रहे हैं। यूरोप रो रहा है, अमेरिका रो रहा है, ऑस्ट्रेलिया रो रहा है, सारी दुनिया रो रही है और हिन्दुस्तान ने भी थोड़ा-थोड़ा रोना शुरू किया है। लेकिन जो श्रेय का मार्ग है, वह आनन्द का मार्ग है। इसीलिए अर्जुन कहता है – *तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्*। मुझे वह रास्ता बतलाओ जिस पर चलकर मैं श्रेय, ज्ञान, प्रकाश और आत्मा की प्राप्ति करूँ। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि जो व्यक्ति एक रास्ते पर ठीक ढंग से चलेगा, उसको दोनों की प्राप्ति होगी। वह रास्ता है गीता का।

गीता कहती है काम भी करो और काम से अलग भी रहो। संभव है क्या? हाँ, संभव है। संसार में कमल के पत्ते की तरह रहकर – *पद्मपत्रमिवाम्भसा*। कमल का पत्ता जल में पैदा होता है, जल के बिना नहीं रह सकता, मगर फिर भी जल से वह अलग है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश:।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.58॥

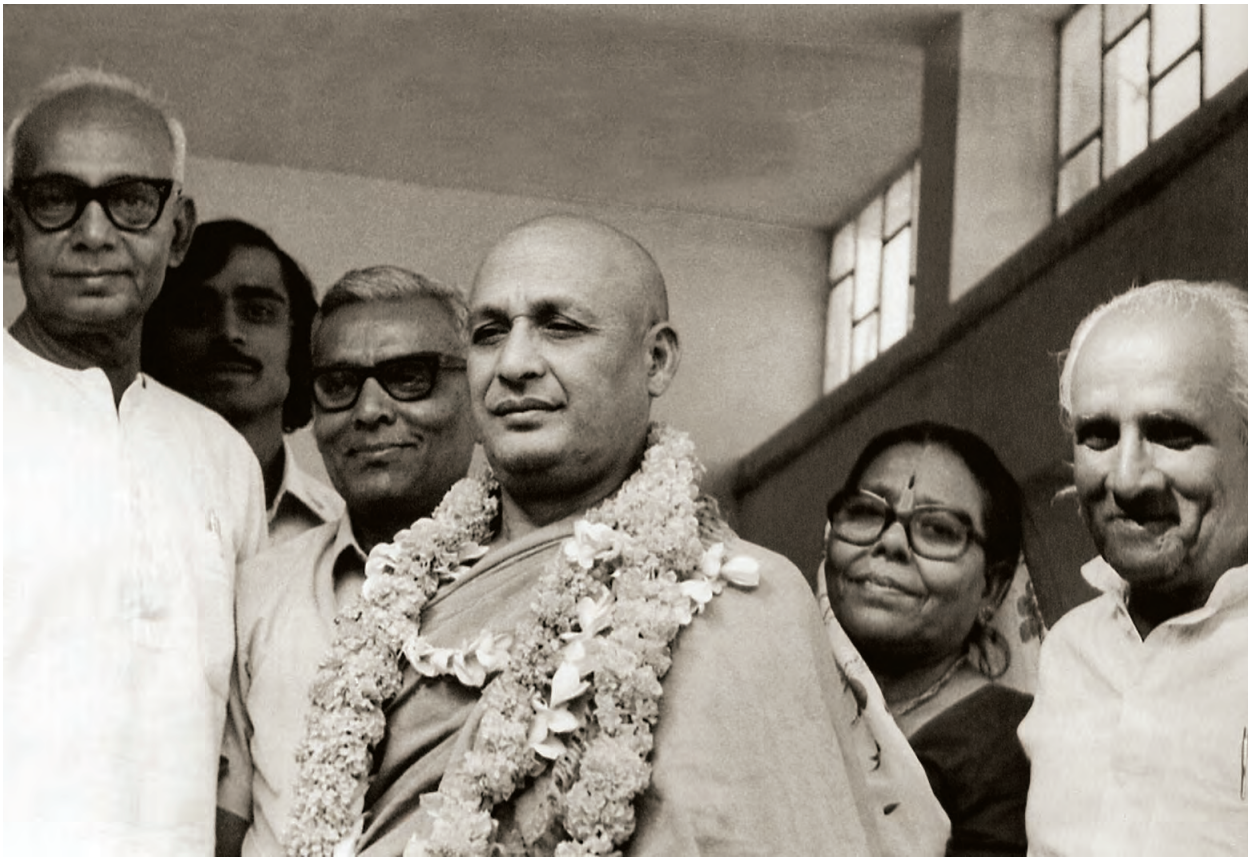

जैसे कछुआ अपने अंगों को अन्दर समेट लेता है, उसी प्रकार ज्ञानी आदमी विषयों के मार्ग में चलते समय विषयों का जो विष होता है, विषयों का जो डंक होता है, विषयों की जो लाल बत्ती होती है, वहाँ पर अपनी इन्द्रियों को समेट लेता है।

अब करना क्या है? चलना कैसे है? मेरी समझ में दो सूत्र आते हैं। एक, मैं जो कुछ भी कर्म करता हूँ, अपने को निमित्त मानकर ही करता हूँ। अगर मैं इस काम को नहीं भी करूँगा तो भी यह काम होगा। इसको कहते हैं निमित्त भाव। दूसरा तरीका, कर्म करने के बाद उससे जिस फल की उत्पत्ति होती है उस फल को बाँट देना चाहिए। दूसरों को दे देना चाहिए, इससे मनुष्य उस कर्म के फल से मुक्त रहता है।

आज हमारे देश में बहुत-से करोड़पति लोग हैं। बहुतों को मैं जानता भी हूँ। उनके घरों में डॉक्टरों की लाइन लगी रहती है। रोज बीमार पड़ते हैं। मुझसे पूछते हैं, 'स्वामीजी, बड़ी तकलीफ है, कोई आसन वगैरह बतलाइये।' मैं कहता हूँ, 'जितनी चिन्ता धन और मान की संभाले हो उसे मुझे दे दो, तबियत ठीक हो जायेगी।' हम बोलते हैं कि जो अधिक है हमें दे दो, तुम्हारी तबियत ठीक हो जायेगी। लेकिन लोगों को डर लगता है किसी को धन देने में। जो धन आदमी को सम्पत्तिशाली बनाता है, वह साथ ही चिन्तित और परेशान भी बनाता है।

व्यक्ति को सम्पत्तिशाली नहीं, ऐश्वर्यशाली होना चाहिए। जैसे श्रीकृष्ण या श्रीराम हुए, वे सम्पत्तिशाली नहीं, ऐश्वर्यशाली थे। सम्पत्ति तो दु:ख का कारण है। सम्पत्ति का अर्जन करते समय हम आसक्ति, ममता, मोह और द्वेष का शिकार होते हैं। गीता में इन सब बातों को बहुत अच्छी तरह से समझाया गया है। इसका सब लोगों को अध्ययन करना चाहिए और इसी के मुताबिक अपने जीवन को बनाना चाहिए। अगर आप गीता का एक श्लोक ठीक ढंग से समझ लोगे तो जीवन के लिए एक दिशा मिल जायेगी –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥18.66॥

इन्द्रियों और मन के धर्मों को छोड़कर मनुष्य को ईश्वर की शरण में जाना है। यहाँ धर्म को छोड़ने के लिए नहीं कहा, बल्कि प्रकृति और कर्म के धर्मों को छोड़ने के लिए कहा है। दुनिया में एक ही शक्ति है जो मनुष्य को दु:ख से मुक्त

कर सकती है। आप दूसरे का नाम लेना छोड़ दो कि वह गवर्नर है, कलेक्टर है, मजिस्ट्रेट है या मिनिस्टर है जो मुझे दु:ख से मुक्त कर देगा। नहीं, किसी में ताकत नहीं। अंधे के कंधे पर जिन्दगी भर चलते रहोगे तो कभी मंजिल पर नहीं पहुँचोगे। सब दु:खी हैं, तब तुम्हारे दु:ख को कौन दूर कर सकता है? दु:ख को दूर करने वाली शक्ति एक है, और वह शक्ति है ईश्वर का अनुग्रह। जिस दिन तुम्हें ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जायेगा, तुम परम सुखी बन जाओगे। तुम पापरहित बन सकते हो, तुम पिपासारहित बन सकते हो। काम, क्रोध, लोभ, मोह से कितने दिन तक लड़ोगे? संभव नहीं है, मर जाओगे। ये बड़ी शक्तियाँ हैं। इनके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए केवल एक की शरण में रहना।

अर्जुन ने भगवान कृष्ण को चुना था, उन्हें अपना सारथी बनाया। उसी प्रकार मैं आपसे पूछता हूँ, और आप भी आज अपने से पूछिये कि आपके जीवन का सारथी कौन है? मन मेरा सारथी, लोभ मेरा सारथी, काम मेरा सारथी, क्रोध मेरा सारथी, स्वार्थ मेरा सारथी। सब लूले-लंगड़े-कोढ़ी लागों को आपने ड्राइवर बना दिया है, किसी को भी गाड़ी चलाना मालूम नहीं, इसलिए तो दुर्घटना हो जाती है। सफर लम्बा है और ड्राइवर अनाड़ी है। जीवन के इस महायुद्ध में हमलोगों की अपनी व्यूहबन्दी होनी चाहिए और हमें इस शरीर रूपी रथ में अर्जुन की तरह अन्तर्यामी प्रभु से गीता का ज्ञान आत्म-चिंतन के द्वारा सीखना चाहिए। गीता के बारे में हम रात-दिन बोल सकते हैं, पर हमारी बात समाप्त नहीं होगी क्योंकि गीता का ज्ञान जीवन के हर पक्ष में मदद करता है।

त्याग का व्यावहारिक रूप

एक संस्मरण याद आता है। मैं जब स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम गया तो मुझे एक कमरा दिया गया। मैं बड़ा विचित्र आदमी था, बिना कम्बल के जमीन पर सोता था। जो कम्बल मुझे आश्रम से दिया गया उसे मैंने लौटा दिया। मैं दरवाजे में ताला भी नहीं लगाता था, क्योंकि मेरे पास कुछ था ही नहीं ताला लगाने लायक। कमरे में मैं घड़े में पानी भी नहीं रखता था, लोटा भी नहीं रखता था, गिलास तक नहीं रखता था। यदि प्यास लगती तो सीधे गंगाजी जाता था। मैं आश्रम का ज्वाइन्ट सेक्रेटरी था, लेकिन जंगलों में लैट्रिन के लिए जो बाल्टी रखी जाती है वह भी मैं अपने पास नहीं रखता था। हाँ, गीता रोज पढ़ता था और उस पर चिंतन भी करता था।

एक दिन स्वामीजी निरीक्षण के लिए मेरे कमरे में आये। मेरी अलमारी देखी, वह खाली थी। चौकी देखी, वह भी खाली। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारे कमरे में गिलास-वगैरह नहीं है क्या?' मैंने कहा, 'मैं गिलास नही रखता।' वे बोले, 'क्यों नहीं रखते?' मैंने कहा, 'मुझे परिग्रह अच्छा नहीं लगता।' परिग्रह का अर्थ होता है चीजों को इकट्ठा करना। वे बोले, 'धत्! तुम फालतू बात बोलते हो। कहाँ से तुम ये सब बातें सीखकर आये हो?' स्वामीजी ज्यादा बातें नहीं बोलते थे। शाम को जब स्वामीजी नीचे गये तो आठ रजाई, आठ गद्दे, आठ मच्छरदानी, आठ गिलास, एक स्टोव, मिट्टी-तेल का टीन और चाय का एक डिब्बा मेरे कमरे में भिजवा दिया! अब मेरी समझ में नहीं आया कि क्यों भेजा गया है। उन सबको मैंने किनारे पर रख दिया। पड़ा है, पड़ा रहने दो, भण्डारगृह ही सही। फिर कई दिनों के बाद स्वामीजी आये, देखा और बोले, 'चाय का डिब्बा इस्तेमाल करते हो कि नहीं।' मैंने कहा, 'नहीं।'

गुरु लोग बड़े विचित्र प्राणी होते हैं। गुरुजी ने मुझे ऐसा फँसाया कि दूसरे दिन से मैंने चाय बनाना शुरू किया, दरवाजा बन्द करके। एक दिन स्वामीजी आये और पूछा, 'चाय खत्म हो गई या है?' मैंने कहा, 'अभी बची है, रोज थोड़ी-थोड़ी बनाता हूँ।' बोले, 'किसके लिए बनाते हो?' मैंने कहा, 'अपने लिए बनाता हूँ।' बोले, 'अरे, माधवानन्द, कृष्णानन्द आदि को भी बुला

लिया करो।' मैंने सोचा, 'यह तो बड़ा झंझट है। कहाँ यहाँ गिलास भी नहीं था, अब दो-दो आदमियों के लिए चाय बनाओ!'

जब स्वामीजी को पता चला कि इस अंधे चेले के दिमाग में कुछ घुसने वाला नहीं है तब एक दिन उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, 'तुम धन-संपदा रख सकते हो, गद्दा-कम्बल रख सकते हो, चाय-चीनी रख सकते हो, दूसरों के लिए जरूर सब कुछ रख सकते हो। तुम भले ही उसका इस्तेमाल मत करो। जो खुद चाय नहीं पीते, वे दूसरों को चाय दे सकते हैं।' फिर पूछा, 'गीता पढ़ते हो?' मैंने कहा, 'हाँ, पढ़ता हूँ।' उन्होंने कहा, 'आज से तुम किताब बन्द कर दो। आज से तुम पैसा रखो, एक कमरे के बदले पाँच कमरे रखो, तीस गद्दे रखो, खूब चीजें रखो। जो भी आता है उसे चाय बनाकर दो। दवाइयाँ रखो, बीमारों को दो।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा स्वामीजी, मगर इसमें झंझट बहुत होता है, आदमी फँस जाता है।' स्वामीजी बोले, 'नहीं, सेवा की महत्ता को जानना चाहो तो ऐसा ही करो। तुम्हें जब मालूम पड़ जायेगा कि ऐसा करने से दूसरों को आनन्द आता है, दूसरों को सहानुभूति मिलती है तो तुम्हारा आनन्द बढ़ जायेगा।'

मैं आपको बतलाऊँ, इसके बाद मेरा कमरा अजायबघर हो गया! मेरे कमरे में लिफाफा भी मिलता था, डाक टिकट भी मिलती थी, पेन-पेन्सिल भी मिलते थे। कोई मेरे कमरे में आता और कहता कि मुझे स्याही चाहिए तो मैं कहता था वहाँ से ले लो। कोई बोलता, 'स्वामीजी, मेरे पेट में दर्द हो रहा है', मैं कहता, 'ठीक है, यह दवाई ले लो।' तब जाकर मुझे मालूम पड़ा कि त्याग का मतलब वस्तु का त्याग नहीं होता है।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥18.2॥

अभी तुम जो काम करते हो, स्वार्थ के लिए करते हो। स्वार्थ का मतलब केवल अपने लिए होता है, पर तुम दूसरों के लिए काम करो। *काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः* – विद्वान् लोगों ने कहा है कि काम्य कर्मों का त्याग करो, यही संन्यास है। तुम्हारे पास जो धन है, विद्या है, शक्ति है, उसका दूसरों के लिए उपयोग करो, यही कर्मयोग है। जिस कर्म को करने से दूसरों का हित होता हो, उस कर्म से चित्त की शुद्धि होती है। कर्म करते जाओ, चाहे राष्ट्र के लिए करो या समाज के लिए,लेकिन अगर आपके कर्म में स्वार्थ निहित होगा तो उच्च रक्तचाप होगा, मधुमेह होगा। तब मनुष्य गीता की इस बात को समझेगा।

आज इस गीता जयन्ती के पवित्र पर्व पर हम एक ही प्रार्थना करते हैं और वह यह कि इस देश के लोगों को नि:स्वार्थ काम करने को मिले। हमारे आश्रम में बहुत-से लोग आते हैं, यूरोप, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया से भी लोग आते हैं। हमारे यहाँ काम बहुत होता है। एक दिन किसी ने मुझे खबर दी कि एक भारतीय लड़का पूछ रहा है कि हम इतना काम क्यों करते हैं, इससे क्या फायदा होता है। हमने जवाब दिया, 'विदेश से जितने लोग आते हैं, उनसे पूछो कि तुम इतना काम क्यों करते हो?' तो उसने बीस विदेशी स्वामियों से पूछा। उन्होंने कहा, 'हम आत्म-शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।' *योगिन: कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये* – यही गीता का सार है।

इस देश के लोगों को आज निष्काम कर्म के दर्शन को समझना होगा। जिस दिन आप लोग इस दर्शन को समझ जायेंगे, उस दिन से आप कर्मयोगी हो जायेंगे और तब आप जो भी कर्म करेंगे उससे उत्पन्न फल आपको कई गुना ज्यादा मदद करेगा। हमारी यही चाह है कि गीता का कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का संदेश हमारे देश के जन-जन तक पहुँचे। गीता लाखों-करोड़ों में छपती और बिकती है, मगर उसके आगे हम नहीं कहेंगे। बाइबिल के बाद दूसरी यही किताब है जो इतनी छपती है और इसके मानने वाले बाइबिल से भी ज्यादा हैं, पादरी लोग भी मानते हैं। यह गीता जिस दिन हमारे जीवन में व्यवहार और क्रिया के रूप में आ जायेगी, उस दिन हम समझेंगे कि हमारे देश का उद्धार हो गया है। हमारी कामना है कि हमारा देश कर्मयोगियों का देश बने, हमारे बच्चे कर्मयोग के आदर्श को लेकर जीवित रहें। छोटे-छोटे तुच्छ स्वार्थों की भावना से हम लोग ऊपर उठकर श्रेय का मार्ग प्राप्त करें।

– 2 दिसम्बर 1976, गीता जयन्ती समारोह, भोपाल

गीता में स्थितप्रज्ञ का आदर्श

गीता में अनेक स्थानों पर आपको एक ऐसे प्रभावमुक्त व्यक्ति बनने की सलाह दी गई है जिसके मन पर कोई असर न पड़े। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में सदा स्वस्थ और स्थिरमति रहने का ही सर्वत्र उपदेश है। किये गये कर्म का मन पर असर न पड़े, इसके लिए मन को मजबूत बनाना पड़ता है। यदि एक मोटर-कार की शक्ति केवल चार व्यक्तियों को ले जाने की है और उसमें चार के बदले आठ व्यक्तियों को बिठा दिया जाए तो परिणाम क्या होगा? यही न कि कार बेकार हो जायेगी। इसी तरह से कमजोर दिमाग वाले व्यक्ति पर भी असर बहुत ज्यादा और जल्दी पड़ा करता है। मोटर में ज्यादा वजन हो तो काम नहीं कर सकती, वैसे ही कमजोर मन और दिमाग वाले लोग अति सुख या दु:ख को सहन नहीं कर सकते। इसी वजह से वे कभी पागल तो कभी बीमार हो जाते हैं। किसी को हार्ट-अटैक तो किसी को हिस्टीरिया हो जाता है। उनका दिल और दिमाग दुनिया के वजन को संभाल नहीं पाता। दुनिया के वजन का मतलब है दुनिया में आये दिन होने वाली घटनायें जिनका असर मन पर पड़ता है। चाहे वे सुख की हों या दु:ख की, कमजोर व्यक्ति इनकी चपेट में जल्दी आ जाते हैं।

कुछ लोग दुनिया में साधक बनकर पैदा होते हैं। ऐसे लोगों के जीवन में चाहे कैसी भी घटना घटे वे संभाल लेते हैं। चाहे मृत्यु हो, चाहे धन लुट जाए, चाहे चोर आ जाए या कितनी भी खुशी हो जाए, लाखों रुपये, वैभव, यश या उच्च पद, कुछ भी मिल जाए, ऐसे लोगों के ऊपर असर नहीं होता। वे अपना संतुलन कभी खोते नहीं। ऐसे लोगों को कहते हैं जीवनमुक्त। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आप अपने दिमाग को मजबूत बनाइए।

संसार में हरेक आदमी के दिमाग की ताकत अलग-अलग होती है। प्रत्येक के दिमाग पर वैसा ही असर पड़ता है जितनी उसके दिमाग की ताकत होती है। शरीर विज्ञान और मनोचिकित्सा विज्ञान के शोधों ने भी इस बात को प्रमाणित किया है। मनोविज्ञान में कुछ ऐसे प्रयोगों का निर्माण हुआ है जिनसे बौद्धिक शक्ति और महत्वाकांक्षा का स्तर नापने का प्रयत्न किया जाता है। कुछ लोगों की शक्ति इतनी कम होती है कि वे जरा भी सुख-दु:ख सहन नहीं कर सकते। उनके मन और व्यक्तित्व पर उसका तुरंत असर पड़ता

है। पर कई लोग प्रिय या अप्रिय, किसी भी परिस्थिति से समझौता कर लेते हैं, और समझौता न कर सकने के कारण कई लोग शराब, जुआ या सिगरेट जैसी बुरी आदत लगा लेते हैं। बुरी आदतों का मतलब है कि उनके मन पर असर जरूर पड़ा है। अंतर यही है की कुछ लोगों ने उससे समझौता कर लिया, परंतु उनसे सहन नहीं हुआ तो उन्होंने मन को बहलाए रखने के अन्य साधन ढूँढ लिए। कुछ लोगों का दिमाग बहुत मजबूत रहता है, उन्हें सुख और दु:ख का पता नहीं चलता।

मन का स्वामी बनना

आदमी को बदलने के लिए उसकी विचारधारा को बदलना पड़ता है और विचारों में परिवर्तन लाने के लिए योग की आवश्यकता है। हर व्यक्ति के लिए योगाभ्यास जरूरी है, क्योंकि अभी तो विचार ही हमारे मालिक हैं। वे जो कराना चाहते हैं, वही हम करते हैं। यदि मेरा विचार चाहे कि मुझे नींद आनी चाहिए तो सचमुच ही नींद आने लगती है। हम जगे रहने की कितनी भी कोशिश करें, परंतु नींद जरूर आएगी। यदि आपको यह विचार आ जाए कि अब भोजन करना चाहिए तो आपको जरूर भूख मालूम पड़ेगी। कहने का मतलब यह कि विचार हमारे स्वामी हो गए हैं और हम विचारों के नौकर। जब विचार इस तरह के हो चुके हैं तो उन्हें बदलने के लिए आत्म-संयम की बड़ी आवश्यकता है। आत्म का अर्थ होता है स्वयं को और संयम का अर्थ होता है नियंत्रित करना। आत्म-संयम का तात्पर्य है अपने विचारों को अपने नियंत्रण में रखना।

हम मन के नौकर क्यों हो जाते हैं? क्योंकि हमारा विचारों पर नियंत्रण नहीं है। हमें अपने मन का स्वामी बनना चाहिए और मन का स्वामी बनने का एक ही तरीका है – कुछ दिनों तक मन या विचार जो कहे ठीक उसका उल्टा करना। मन की आदतों को बदलना चाहिए। यह साधक के लिए एक साधना है। अगर आज मन चाहे कि बहुत बढ़िया कपड़ा पहनना चाहिए तो उस दिन जरूर फटा-पुराना कपड़ा पहनिये। जिस दिन आपका मन बढ़िया खाना चाहे उस दिन आप सिर्फ दाल-रोटी खाइये। यदि मन सोना भी चाहे तो कोई काम करने लग जाइये। इस तरह जो मन चाहे ठीक उसका उल्टा करो। शुरू में आपको बहुत कठिन लगेगा, परंतु मन के विरोध में काम करने से धीरे-धीरे वह मजबूत होगा।

जीवन में सुख और दु:ख तो हमेशा आते ही रहते है, परंतु जो अपने मन का शासक या मालिक बन जाता है उसको हर परिस्थिति में आनन्द मिलता है। उसको कहते हैं मन का स्वामी। यह मन मुख्य मन्त्री की तरह काम करता है जिसके चार विभाग हैं। उनके अनुसार वह चार रूप में कार्य करता है। ये चार रूप हैं – मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। ये सब एक ही हैं पर नाम अलग-अलग हैं। जिस तरह एक ही आदमी पुत्र भी कहलाता है, पिता भी और भाई भी, लेकिन वस्तुत: वह एक ही व्यक्ति है, उसी तरह मन के भी उसके कार्यों के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम हैं।

मनुष्य जब मनन करता है, संकल्प करता है तो यह है मन। जब सोच-विचार करके किसी निश्चय पर पहुँचता है तो उसे कहते हैं बुद्धि। जब पुरानी घटी हुई बातें याद आती हैं तो उसे कहते हैं चित्त। जब हम रात को सो जाते हैं और मन में यह विचार रहता है कि 'मैं हूँ' तो इसे कहते हैं अहंकार। ये मन के चार अलग-अलग नाम हैं। मन जो भी कार्य करता है वह दस इन्द्रियों के द्वारा करता है। इनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं – आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा, तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं – हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ और मुख। ज्ञानेन्द्रिय का मतलब है ज्ञान ग्रहण करने का यंत्र और कर्मेन्द्रिय का तात्पर्य उस यंत्र से है जिससे कर्म होता है। देखा जाय तो ये इन्द्रियाँ ही रावण के दस सिर हैं और मन है रावण। इन्द्रियाँ मन के सिर हैं। जब यह मन दस इन्द्रियों के द्वारा कार्य करता है तो इसे बड़ा आनन्द मिलता है। स्मृति का असर भी मन पर

पड़ता है। इसलिए मन जो काम कराना चाहता है, जब चाहे कराता है, जहाँ चाहे कराता है।

इस संसार में ऐसे लोग मुट्ठी भर ही हैं जिनका अपने मन पर नियंत्रण है। वे मन से जो चाहते हैं करा लेते हैं। मन के अधीन न होकर जो मन को अपने अधीन कर लेते हैं वे सदा आनन्द में रहते हैं। उन्हें सुख-दु:ख के झंझटों से छुट्टी मिल जाती है। जिस आदमी में आत्म-संयम है उसका मन होशियार घोड़े की तरह होता है। उसका मन बहुत मजबूत होता है।

जिस रथ का सारथी कमजोर है, जिस रथ का घोड़ा घास का लोभी है और जिसकी चाल धीमी है, जिसका मालिक लापरवाह है, ऐसे रथ को कितनी ही चौड़ी राह क्यों न मिले, वह एक्सीडेन्ट जरूर करेगा। लेकिन जिस रथ के पहिये मजबूत, जिसके घोड़े घास के लालची नहीं तथा जिनकी चाल तेज व चुस्त है और जिसका सारथी चौकस है, वह रथ कितने ही ऊबड़-खाबड़ और संकीर्ण पथ पर क्यों न चले, कभी दुर्घटनाग्रस्त नहीं होता। उसी तरह यह शरीर एक रथ है, मन सारथी है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं। जो व्यक्ति इन्द्रियों के मुताबिक काम करता है, वह कितना ही धनी क्यों न हो, उसके पास कितनी ही सुख-संपत्ति क्यों न हो, वह कभी भी सुखी नहीं रह सकता, लेकिन जिसने अपने हाथों में विवेक और बुद्धि का चाबुक उठाया हुआ है, वह सदा मन पर शासन करता है।

शासन करने के लिए विवेक की जरूरत है। यदि मन कहे कि मिठाई खा लो तो विवेक कहेगा कि नहीं, मिठाई नहीं खानी चाहिए। कमजोर मन वाले मनुष्य को चाहे मधुमेह क्यों न हो, लेकिन फिर भी मिठाई खा लेगा। मजबूत मन वाला विवेक से काम लेगा। इस प्रकार विवेक से चलने वाला आदमी अपने मन का स्वामी बनता है।

कर्मयोग द्वारा चित्तशुद्धि

मन का स्वामी बनने के लिए चित्त की शुद्धि भी जरूरी है और कर्म के बिना तो चित्त की शुद्धि होती नहीं। संतों की बात छोड़ देनी चाहिए, बाकी सब लोगों को तो कर्म करना ही पड़ता है। अपनी बुद्धि को स्थिर करके कुशलतापूर्वक कर्म करना चाहिए। चित्तशुद्धि के बाद ही ध्यान, भक्ति, पूजा-पाठ इत्यादि शुरू करना चाहिए। चित्तशुद्धि के पहले चाहे कितना भी ध्यान, भक्ति, पूजा-पाठ इत्यादि क्यों न किया जाए, आत्म-ज्ञान और प्रकाश नहीं मिलेगा।

अब मान लो कि मैंने 18-20 साल तक खूब कर्म किया, किन्तु यह कैसे पता चले कि मन की शुद्धि हुई है या नहीं? उसकी पहचान यही है कि मन पर सुख-दु:ख का असर पड़ता है या नहीं। चित्तशुद्धि वाले व्यक्ति के घर में चाहे शादी हो या किसी की मृत्यु हो जाय, वह किसी घटना से प्रभावित नहीं होता। कर्म करते-करते उसका मन इतना शुद्ध और मजबूत हो जाता है कि मन में सुख और दु:ख का अनुभव उत्पन्न नहीं होता। ऐसे साधक को समझना चाहिए कि उसका मन शुद्ध हो चुका है। दूसरी ओर ऐसे कितने ही लोग होते हैं जो दिनभर 108 माला जप करते हैं, खूब घंटी बजाकर पूजा करते हैं, घंटों आँखे बंद करके बैठते हैं, तीर्थयात्रा करके आते हैं, किन्तु फिर भी कुछ होता नहीं। न उन्हें शान्ति मिलती है, न ज्ञान और न ही प्रकाश, क्योंकि कर्म के द्वारा चित्त की शुद्धि नहीं हुई है।

जब तक आदमी लायक न बने तब तक आत्मज्ञान नहीं होता। इसके लिए दिमाग को बहुत मजबूत बनाने की जरूरत है। यदि आत्मज्ञान चाहते हो तो चित्त की शुद्धि आवश्यक है। आत्मज्ञान कभी अशुद्ध चित्त में नहीं होता। शुद्ध चित्त का अर्थ है कि मन पर असर न पड़े। चित्त को बत्तख की

तरह बनाओ जो पानी के बाहर आते ही शरीर के पानी को ऐसे झाड़ लेती है कि पानी की एक बूंद भी उसके शरीर पर नहीं रह जाती। कमल के पत्ते की तरह बनो, संसार के पानी के संग रहो, किन्तु अपने मन को भींगने मत दो। कमल पत्र की तरह सुख-दु:ख रूपी जल से ऊपर रहो।

गृहस्थाश्रम कर्मयोग के लिए ही बनाया गया है। चित्तशुद्धि के बाद ही माला जपनी चाहिए। अच्छी, साफ, खोदी हुई जमीन पर बीज डालेंगे तो फसल ज्यादा और अच्छी मिलेगी, लेकिन यदि जमीन सख्त और ऊबड़-खाबड़ होगी तो बीज कितना ही क्यों न डालें पर उसका फल नहीं होगा। अगर जमीन थोड़ी भी अच्छी रहेगी तो थोड़ा फल जरूर मिलेगा। इसी तरह जब मन रूपी जमीन में चित्तशुद्धि रूपी खाद होगी तो वह मन ध्यान भी अच्छी तरह से कर सकेगा। जिसका मन शुद्ध और एकाग्र हो, जिसे संसार मिथ्या भासता हो, ऐसे व्यक्ति को इतनी जल्दी आत्मज्ञान होता है जैसे आँखें खोलते ही रोशनी का होना।

आत्मज्ञान कहीं बाहर नहीं है। वह अपने अंदर ही है। जो मन को जानता है वह परमात्मा को भी जानता है। जिसने अच्छी तरह से मन का अध्ययन किया है वह उतनी ही जल्दी परमात्मा का दर्शन करता है। यह मन इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान को छिपा देता है। जैसे रावण ने सीता को अशोक वन में छिपा रखा था वैसे ही मन भी ज्ञान को इन्द्रिय-समूह के वन में छिपा देता है, और जैसे राम ने रावण का संहार किया उसी तरह आपको भी अपनी वासनाओं का संहार करना है। इन्द्रियों का संहार करने से कुछ नहीं होता। यदि आप आँखें बंद कर लें तो भी आपका मन इधर-उधर तो जाएगा ही। अगर आप कान बन्द भी करेंगे तो उससे क्या फायदा होगा? मन में तो विचार उठते ही रहेंगे। कहने का तात्पर्य यह कि इन्द्रियों को दबाना नहीं, बल्कि उनका संयम करना चाहिए।

मन को जिन चीजों में आनंद आता है उसे कहते हैं भोग, मन को जिन चीजों से दु:ख मिलता है उसे कहते हैं राग, और जिसका मन किसी से भी प्रभावित नहीं होता उसे कहते हैं योग। तृष्णा भोग की प्यास है, इसका पहले नाश करना होगा। जब तक तृष्णा का नाश नहीं होगा योग नहीं सध सकता। आत्म-चिन्तन से तृष्णा का नाश करना चाहिए। कर्म अपने में एक साधना है। 'तुम कर्म करो, कर्ता मत बनो' – यही गीता का सार संदेश है। गुरु के सत्संग से इसका ज्ञान होता है और योगाभ्यास द्वारा इसकी अनुभूति होती है।

कर्म का सिद्धान्त और पुनर्जन्म

क्या जन्म-जन्मान्तर सत्य है? कर्म का सिद्धांत क्या है?

मनुष्य का या अन्य किसी भी जीव का एक जन्म नहीं होता। जब तक बीज का नाश नहीं होता है तब तक बीज बार-बार जन्मता रहता है, और जब बीज का नाश हो जाता है उसके बाद वह निःसत्त्व हो जाता है, उसके बाद उसका जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार जीव चैतन्य एक योनि से दूसरी योनि में अनुभव करते हुए ज्ञान-अज्ञान को देखते हुए कई यात्राएँ कर रहा है। यह यात्रा जीव की आध्यात्मिक यात्रा है। जब तक गंभीरता से इसका चिंतन नहीं करते हैं तब तक हम इसको समझ नहीं सकते। यदि हम समझते हैं कि माँ से हम पैदा हो गये और एक दिन मर गये तो यह भौतिक दृष्टि है।

आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर पंच-तत्त्वों का बना हुआ है। यह जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता है, किन्तु इसी शरीर के अन्दर जो चैतन्य जीव है, जो इस शरीर के अंदर भोग करने वाला है, वह शरीर के नष्ट हो जाने के बाद अपनी इच्छाओं और कर्मों के अनुसार एक संस्कार की पोटली बनाकर दूसरे शरीर को प्राप्त होता है। जैसे-जैसे वह एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है वैसे-वैसे उसकी इच्छाएँ-अनिच्छाएँ बन जाती है और उपभोग दुःख के कारण बन

जाते हैं। जो एक जन्म में अच्छा लगता था, दूसरे जन्म में अच्छा नहीं लगता, उससे उसे विरक्ति होती जाती है। ऐसे धीरे-धीरे प्रगति करते हुए वह मनुष्य योनि में आता है।

मनुष्य योनि के पहले वह अनेक योनियों में भ्रमण करता है। एक निश्चित योजना स्पष्ट हो जाती है। पशु योनि तक जीव का विकास प्रकृति के नियमों के अनुकूल होता है। प्रकृति ने उसके लिये जो निर्धारित कर दिया है उसी योजना पर चलना पड़ेगा। किन्तु मनुष्य योनि आने के बाद मनुष्य की एक योजना स्पष्ट हो जाती है। क्यों? इसलिए कि मनुष्य योनि में एक विशेषता है –

आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानो हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीना: पशुभि: समाना:॥

मनुष्य में ज्ञान है, ज्ञान का मतलब होता है 'मैं हूँ' – अपने अस्तित्व, देश और काल का ज्ञान जो पशुओं या अन्य जीवों में नहीं है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को बाहर और अंदर, दोनों की जानकारी होती है। दोनों की जानकारी होने के बाद अपने आध्यात्मिक विकास को तीव्रतर कर सकता है। मनुष्य के पूर्व जन्म प्रकृति के अधीन हैं, प्राकृतिक नियमों के अंतर्गत हैं, लेकिन आगे के जन्म उसकी साधना और पुरुषार्थ पर निर्भर करते हैं।

इस जीवन में किये गये कर्मों का फल मरने के बाद भुगतना पड़ता है, यह कहाँ तक सत्य है?

यह पूरा सत्य है। जमीन में गिरा हुआ कोई भी बीज जन्मेगा जरूर, चाहे वह फूल का बीज हो या धान, धनिया, पालक, मिर्ची या आम का बीज हो। वह अपनी ऋतु के अनुसार जन्मेगा, आम का बीज वैशाख में गिरेगा और सावन में जरूर जन्मेगा। बीज कभी नष्ट नहीं होता।

एक बार की बात है, भगवान बुद्ध के एक शिष्य, जिनका नाम नागार्जुन था, यूनान गये। वहाँ का राजा मिनाण्डर था, मिनाण्डर ने नागार्जुन से यही प्रश्न पूछा। नागार्जुन ने कहा, 'तुम मुझे एक मुट्ठी चना मंगाकर दो।' राजा ने चना मंगाकर दिया। नागार्जुन ने पूछा, 'यह जन्मेगा कि नहीं?' राजा ने कहा, 'जन्मेगा।' नागार्जुन ने फिर पूछा, 'चना बनेगा कि गेहूँ बनेगा?' राजा ने कहा, 'चना बनेगा, गेहूँ नहीं बनेगा।' नागार्जुन ने कहा, 'इस बीज को तुम तलवा दो या भुंजवा दो।' राजा ने बीज भुंजवा दिया। नागार्जुन ने पूछा, 'अब चना

जन्मेगा कि नहीं?' तो राजा ने कहा, 'अब नहीं जन्मेगा।' नागार्जुन ने पूछा, 'क्यों नहीं जन्मेगा?' राजा ने कहा, 'अब इस बीज के अंदर के संस्कार खत्म हो गये हैं। हर बीज का एक संस्कार होता है, अंतःशक्ति होती है, वह खत्म हो गयी है।'

इसी तरह से जब तुम कोई भी कर्म करते हो तो उसका एक आघात पैदा होता है और वह आघात बीज रूप में रह जाता है। फिर वासना और इच्छा, दोनों के संयोग से वह बीज उभरता है। कभी वह सकारात्मक रूप से उभरता है, कभी नकारात्मक रूप से, लेकिन उभरता जरूर है। दुनिया में जितने भी प्राणी हैं वे बिना किसी कारण के पैदा नहीं हुए हैं। ऐसा कभी नहीं देखा होगा कि आदमी के पेट से घोड़ा पैदा हुआ हो। आप ने आदमी के पेट से आदमी को ही जन्म लेते देखा है। तो कर्म का फल निश्चित रूप से मिलता है, उन लोगों को जो उन संस्कारों को नष्ट करना नहीं जानते हैं। जैसा कर्म करते हैं वैसा बीज पैदा होता है और उस बीज को निश्चित रूप से भोगना पड़ता है।

कर्म तीन प्रकार के माने जाते हैं – संचित कर्म, क्रियमाण कर्म और प्रारब्ध कर्म। संचित माने जमा पूंजी, क्रियमाण माने आज जो कर्म कर रहे हो और प्रारब्ध कर्म जो परिपक्व हो गये। प्रारब्ध कर्म का कोई इलाज किसी के पास नहीं है, न देवता, न ईश्वर, न संत के पास है। उसका निराकरण किसी ने नहीं किया है। उसका एक ही बचाव है, जो संत कबीरदास ने कहा है –

देह धरे का दंड है सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान सो मूरख भुगते रोय॥

दुःख मेरे को भी है, तुमको भी है। बस इतना अंतर है कि तुम अपने दुःख से दुःखी हो और हम उससे विरक्त हैं।

क्रियमाण कर्म को ठीक कर सकते हैं, सुधार सकते हैं और संचित कर्म को तुम पूरी तरह खत्म कर सकते हो, अपनी तपस्या के द्वारा, साधना के द्वारा, गुरु-कृपा के द्वारा, ईश्वर-कृपा के द्वारा, वैराग्य के द्वारा, त्याग के द्वारा, ऐसे बहुत-से रास्ते हैं। संचित कर्म को तुम पूरा खत्म कर सकते हो। संत-महात्मा कहते हैं, धनुष के तरकश में तीर है, चाहे निकालो या न निकालो, तुम्हारी मर्जी पर है। यह हुआ संचित कर्म। धनुष पर तीर है, चलाने में थोड़ी देर बाकी है, सोच लो, वापिस जा सकता है। यह हुआ क्रियमाण कर्म। मगर धनुष से तीर छूट गया तो वापिस नहीं कर सकते। यह तीन प्रकार के कर्मों की गति है।

मृत्यु के पश्चात् मनुष्य चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है, कृपया इसे स्पष्ट करें?

मनुष्य चौरासी लाख योनियों में भ्रमण नहीं करता, बल्कि जीव भ्रमण करता है। जीव अनेक रूपों में जन्म लेकर अपना विकास करता है। कभी बिल्ली, कभी पक्षी, कभी कीड़े तो कभी मनुष्य आदि के रूप में जन्म लेता है। उसका विकास हुआ है एक छोटे जीवाणु से। जब सृष्टि की रचना हुई तब जीव एक छोटा-सा अणु था और उसका विकास नित्य-निरंतर होता रहा। खनिज, वनस्पति, पशु, मनुष्य, देव – ये सब जीव की अभिव्यक्तियाँ हैं। कालक्रम से उसका विकास होता है तब वह वनस्पति जगत् में जाता है। वनस्पति का मतलब घास, पत्ता, फूल, पेड़ आदि। उसके बाद उसका विकास होता है कीड़े-मकोड़े और पशु-पक्षी के रूप में, उसके बाद जीव का विकास मनुष्य योनि में होता है।

मनुष्य योनि जीव के विकास का एक पड़ाव है। हमारे ऋषि-मुनियों ने जीव की इस यात्रा को पुनर्जन्म कहा है। जीव की यह यात्रा जो अव्यक्त से व्यक्त की ओर हुई और व्यक्त में इसका विकास हुआ, इसको कहते हैं आवागमन, मतलब आना और जाना। मनुष्य योनि प्राप्त होते-होते यह जीव एक स्थिति में आ जाता है। उसके बाद कर्म के अनुसार एक शरीर से दूसरे शरीर में जन्म होता है। अब इस पूर्ण आवागमन को हमारे ऋषि-मुनियों ने चौरासी लाख योनि कहा है। योनि का मतलब होता है – जहाँ से कोई वस्तु उत्पन्न होती है, जैसे हमलोगों ने परमात्मा को विश्व की योनि कहा है, क्योंकि वहाँ से सारी सृष्टि का जन्म हुआ है। ये चौरासी लाख योनियाँ केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं, बल्कि खनिज, वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि को मिलाकर हैं। मनुष्य योनि अर्थात् मनुष्य का शरीर चौरासी लाख योनियाँ पूरी करने के बाद मिलता है, उसके पहले नहीं।

मनुष्य के जीवन का निर्माण कर्म से होता है या भाग्य से? भाग्य क्या है और कैसे बनता है?

यह एक ऐसा विषय है जिस पर मनुष्य ने जब से सोचना शुरू किया तब से आज तक लड़ाई चली आ रही है। अभी तक कोई पक्ष जीता नहीं। जैसे राजनीति में कभी एक की जीत होती है तो कभी दूसरे की, उसी प्रकार पुरुषार्थवादी और प्रारब्धवादी लोगों के बीच तर्क और हार-जीत चलती रहती है। विचित्र बात

यह है कि कभी-कभी दोनों की जीत होती है! जब विचार करते हैं तो दोनों के दोनों ठीक लगते हैं। प्रारब्ध भी सच लगता है और पुरुषार्थ भी। पश्चिमी लोगों ने अनुभव किया कि हवा चल रही है, पानी बह रहा है, इसके पीछे कुछ-न-कुछ तथ्य है। धीरे-धीरे वे प्रकृति तक पहुँचे तथा एक नये विज्ञान एवं नयी सभ्यता का आविष्कार किया और अपनी परिस्थितियों को बदल दिया। जहाँ जमीन 8-10 फुट धँसी रहती थी वहीं बड़े आराम से गाड़ियाँ चलती हैं।

प्रकृति के बंधनों से जो बँधा हुआ है, वह भाग्य के अनुसार चलता है और जो प्रकृति के रहस्यों को जान लेता है वह प्रकृति के बंधनों से मुक्त होकर प्रारब्ध के परे चला जाता है। यह उसका पुरुषार्थ है। ये दोनों बातें अपनी जगह ठीक हैं। जो व्यक्ति केवल प्रारब्ध को ही अंतिम मानते हैं उनके जीवन में उन्नति नहीं होती। वह समाज, वह जाति गिरी हुई होती है। जो जाति पुरुषार्थ को ही श्रेष्ठ समझती है वह कामी, लोलुप, विलासी, अहंकारी, किसी को कुछ नहीं समझने वाली होती है। ऐसा आज हम प्रत्यक्ष देखते हैं। पश्चिमी संस्कृति एकदम अन्धकारपूर्ण हैं और हमारी पूर्वी संस्कृति एकदम कट्टर। जब हमलोग दोनों के बारे में बातचीत करतें हैं तो प्रारब्ध को भी सामने रखते हैं और पुरुषार्थ को भी। एक बीज को जब हम धरती में बोते हैं तो उससे पौधा निकलता है, पौधे से अन्न निकलता है और अन्न से पुनः बीज निकलता है। इसमें बीज मनुष्य के कर्मों का परिणाम है, न कि भाग्य, प्रकृति या प्रारब्ध का।

मनुष्य के मरने के बाद उसकी आत्मा का क्या होता है?

यह एक ऐसा प्रश्न है जिसको पूछना ही नहीं चाहिए, क्योंकि रोज तो देखते हो तुम, धनिया का बीज बोते हो तो फिर पौधा होता है और धनिया बनता है। चना बोते हो, पौधा होता है, चना बनता है। यह क्रम नियमवत् चलता रहता है। ठीक यही क्रम मनुष्य के बारे में भी समझो। इस शरीर के अंदर एक बीज है, वह बीज एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है और उस शरीर में वह पलता है, बढ़ता है, फूलता है। जब तक वह बीज रहेगा तब तक वह जरूर उपजेगा। जब उस बीज का नाश हो जाएगा तब वह बीज नहीं उपजेगा।

मुट्ठी भर चना ले लो और बो दो। देखोगे कि थोड़े दिन बाद वहाँ अंकुर निकलेंगे। फिर मुट्ठी भर चना लेकर उसे तवे पर भूँज दो और उसे बो दो। अब अंकुर नहीं निकलेगा। उसी प्रकार से जब तक मनुष्य इच्छाओं और तृष्णाओं से भरा हुआ है, भोग की वृत्ति है, तब तक उसकी आत्मा निरंतर उसकी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयास करती रहेगी। यह स्वाभाविक नियम है, किन्तु जिस दिन उस व्यक्ति को यह पता चल जाएगा कि इच्छायें कभी समाप्त नहीं होतीं, जब उसके मन में वितृष्णा, वैराग्य और ज्ञान भाव की वृद्धि होगी, उसी दिन से वह बीज भी निर्बल और कमजोर पड़ता जाएगा। महात्माओं का वचन है कि यह शरीर वाहन है जिसमें एक यात्री है जीव और दूसरा है ईश्वर। इसमें ईश्वर

अविनाशी है और जीव कर्मों का भोक्ता है। कर्मों का भोक्ता भी वह तब तक है जब तक उसे कर्मों का ज्ञान नहीं रहता। जब ज्ञान हो जाता है तब मनुष्य कर्मों का भोक्ता नहीं रहता, तब वह अपने को आत्मस्वरूप जानने लगता है जिसको शिवोऽहम् और सोऽहम् कहते हैं।

मृत्यु के बाद क्या कोई जीवन है?

इस प्रश्न को थोड़ा और व्यापक बना लें तो अच्छा रहेगा। यह पूछना चाहिये कि पदार्थ के रूपान्तरण की सम्भावना है क्या? केवल मनुष्य ही नहीं, धनिया, जीरा, चावल, गेहूँ या अरहर की दाल हो, कोई भी चीज नष्ट नहीं होती है। पदार्थ अविनाशी है। इतना जरूर है कि कुछ दिनों के बाद तुम उसको देखते नहीं हो, पर वह दूसरे रूप में रहता है। उसी तरह से मरने के बाद शरीर अपने सूक्ष्म, आणविक रूप में चला जाता है। शरीर के अवयव अपने-अपने तत्त्वों में मिल जाते हैं, और शरीर के अंदर जो आत्मा है वह शरीर को त्याग कर अपनी इच्छाओं की पूर्ति और अपने कर्मों को पूरा करने के लिए फिर कोई दूसरा स्थान देखती है। इसलिये मृत्यु के बाद जीवन का अंत नहीं है।

जैसे नाटक के बाद पर्दा गिरता है, उसी प्रकार मृत्यु पर्दे का गिरना है और मृत्यु के बाद मनुष्य पुनः दूसरे जीवन की तैयारी करता है। आत्मा अविनाशी है और कर्म भी। कर्म का भी नाश नहीं होता। बीज जब तक जलेगा नहीं, पुनर्जन्म होते रहेगा। यह पुनर्जन्म का पहला सिद्धान्त है। जब तक बीज जलेगा नहीं, तब तक दूसरा बीज पैदा करेगा। उसी प्रकार जब तक कर्मों का, वासनाओं और इच्छाओं का नाश नहीं होगा, तब तक जन्म लेना पड़ेगा।

कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर में क्या अंतर है? पुनर्जन्म के समय एक योनि से दूसरी योनि में किस शरीर की गति होती है?

मृत्यु के बाद जब स्थूल शरीर का नाश होता है तो सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर के द्वारा ले जाया जाता है। सूक्ष्म शरीर संस्कारों का बना हुआ है और कारण शरीर नित्य-निरंतर इसको वाहन के रूप में लेकर चलता है। कारण शरीर हिरण्यगर्भ शरीर है। मृत्यु के बाद कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर, दोनों निकलते हैं और निकलकर दूसरे शरीर में प्रवेश करते हैं या बीच के लोकों में रहते हैं और कुछ समय बाद पुनर्जन्म को धारण करते हैं।

पुनर्जन्म में पिछले जन्म की बातें याद रहना संभव है क्या?

पूर्वजन्म की बातें इस जन्म में सबको तो नहीं, मगर कुछ लोगों को अवश्य याद रहती हैं।

मनुष्य इस जीवन में जो ज्ञान अर्जन करता है उसका मृत्यु के बाद क्या होता है?

जिस तरह मनुष्य एक शहर से दूसरे शहर में जाता है और अपने मस्तिष्क में पुराने शहर की स्मृतियों को, उपलब्धियों को, उसकी बुराइयों और अच्छाइयों को लेकर जाता है, उसी तरह हम अपने जीवन में ज्ञान अथवा अज्ञान का, पाप अथवा पुण्य का, सत्य अथवा असत्य का जो अर्जन करते हैं, वह हमारे चित्त में बीज रूप में रहता है और जब हम शरीर को छोड़कर जाते हैं, उस समय वह सूक्ष्म शरीर के साथ-साथ एक देह से दूसरे देह में जाता है, इसलिए उसका नाश नहीं होता।

एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने के बीच के समय में ये आत्मायें कहाँ विचरती हैं?

कुछ चीजें शब्दों में नहीं बतलाई जा सकतीं, उन्हें समझना पड़ता है। इस ब्रह्माण्ड में सात लोक हैं। लोक का मतलब केवल यह संसार नहीं, लोक का संस्कृत में मतलब होता है – आलोकित या प्रकाशित होना। भू लोक, भुव: लोक, स्व: लोक आदि सात लोक हैं जिनमें सत्य लोक सबसे ऊँचा होता है। सब लोकों का अलग-अलग विद्युत् क्षेत्र होता है जो दिखलाई नहीं देता। जो आत्माएँ त्याग, तप, वैराग्य और भक्ति वाली होती हैं वे उच्च लोकों में लम्बे समय तक रहकर देर से जन्म लेती हैं।

आत्मा का स्वरूप किस प्रकार का है?

आत्मा का कोई स्वरूप है ही नहीं। जितने भी महात्मा, गुरु, ज्ञानी हुए हैं, उन्होनें आत्मा को केवल तीन शब्दों में समझाया है – सत्, चित् और आनन्द। इसको ठीक-ठीक समझना है, क्योंकि शब्द वाणी के विषय हैं और उनको मन से समझना पड़ता है। वाणी की भी सीमाएँ हैं और मन की भी। हो सकता है कि इसे हम ठीक ढंग से न समझा पायें और आप ठीक ढंग से न समझ पायें। आत्मा केवल स्वयंबोधक शब्द है।

सत्यम् संवाद

जब तक मनुष्य में आसक्ति है, अहंकार भी रहता है। क्या अनासक्त व्यक्ति में अहंकार नहीं होता? कृपया अहंकार को समाप्त करने का उपाय बतलायें।

आसक्ति और अहंकार दोनों साथ-साथ चलते हैं, और दोनों जीवन के लिए थोड़ी दूर तक जरूरी हैं। अगर आसक्ति नहीं रहेगी तो आदमी का मन छितरा जायेगा, और यदि अहंकार नहीं रहेगा तो उसकी व्यक्तिगत पहचान नहीं रहेगी। छितराव को रोकने के लिए और अपनी पहचान को बनाये रखने के

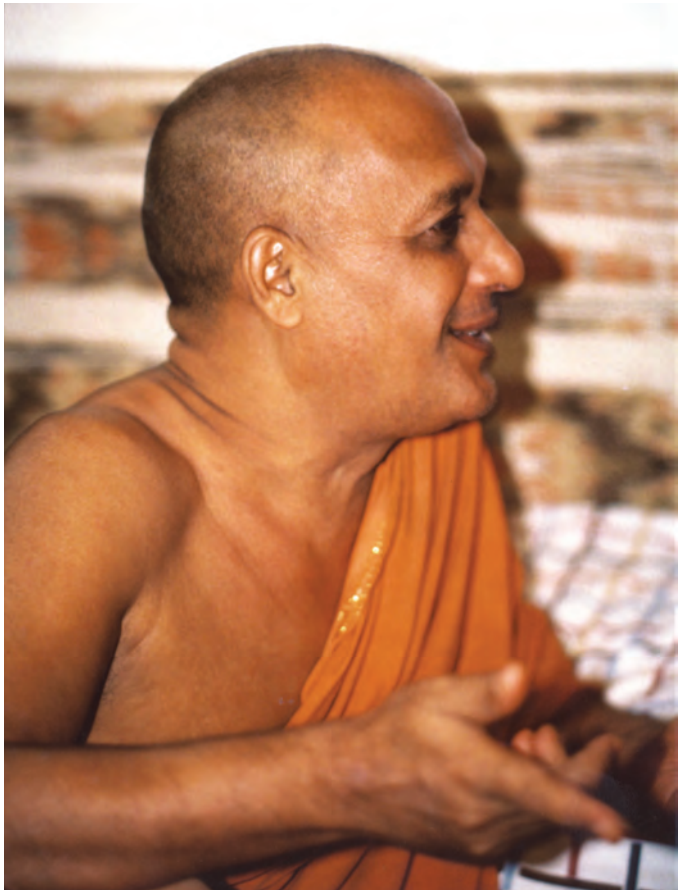

लिए आसक्ति और अहंकार की बहुत जरूरत है। जैसे-जैसे हम आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ते जाते हैं और एकाग्र होते जाते हैं, वैसे-वैसे आसक्ति और अहंकार अपने आप कम हो जाते हैं। आसक्ति और अहंकार को जल्दी से खत्म करने की कोशिश नहीं करनी चहिये। जैसे बच्चे को मूँछ नहीं होती, पर जब बड़ा होता है तो उसको मूँछ आ जाती है।

आध्यात्मिक विकास के साथ आसक्ति और अहंकार दोनों अपने आप कम होते जाते हैं। मगर समस्या यह है कि आप लोग चाहते हैं सब कुछ इसी जीवन में हो जाय। ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि यह जीवन बहुत छोटा है। तुम अगर सौ साल भी जिन्दा रहोगे तो भी इसको छोटा मानो। जैसे तुम स्कूल की एक कक्षा में एक साल रहते हो तो यहाँ समझो कि एक कक्षा सौ साल की है। हर जन्म आध्यात्मिक विकास का एक सोपान है। अगर हम चाहें कि इसी जीवन में हमें आसक्ति नहीं हो, अहंकार नहीं हो और हम जीवनमुक्त बन जायें तो आध्यात्मिक विकास का नियम खत्म हो जायेगा। हर लड़का विश्वविद्यालय में बैठना चाहता है, मगर उसके लिए पहले प्रायमरी, मिडिल, फिर सेकेण्डरी स्कूल पूरा करना पड़ेगा, उसके बाद विश्वविद्यालय में जा पायेगा। वैसे ही मनुष्य का आध्यात्मिक विकास होता है।

संत-महात्मा कहते हैं कि चौरासी लाख योनियों तक इंतजार करने के बाद ये मनुष्य योनि प्राप्त हुई। अब मनुष्य योनि भी तीन स्तरों में आती है – तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। अभी हम लोग जिस स्तर पर हैं वह तामसिक और राजसिक की मिश्रित योनि है। हम लोग केवल तामसिक नहीं हैं और केवल राजसिक भी नहीं है। कुछ राजसिक हैं और कुछ तामसिक। महात्माओं के पास कभी बैठ गये तो थोड़ी सात्त्विक भावना भी रहती है। तामसिक और राजसिक योनि में आसक्ति और अहंकार का अपना महत्त्व है। जब तुम सात्त्विक जीवन में पहुँचोगे तो बहुत अच्छा है, धीरे-धीरे अहंकार अपने आप खत्म हो जायेगा। इस जन्म में नहीं पहुँचोगे तो किसी अगले जन्म में तो पहुँचोगे ही।

क्या हर व्यक्ति के स्वभाव के अनुसार योग की विधियाँ बदल जाती हैं?

जब कुछ लोग, जैसे आश्रम के संन्यासी, योग को एक विद्या के रूप में देखना चाहते हैं और उसको अपने जीवन का प्रमुख दर्शन बनाना चाहते हैं, तो उनको हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि योग की विभिन्न शाखाओं का समन्वय करना होगा। उदाहरण के तौर पर आप समाज में बहुत-से अन्तर्मुखी

लोगों को पायेंगे, जो हमेशा कुछ-न-कुछ सोचते ही रहते हैं कि मास्टर साहब यह बोल रहे थे या पिताजी अमुक चीज बोल रहे थे। अब सवाल है कि इन अंतर्मुखी व्यक्तियों को बहिर्मुखी कैसे किया जाय? यदि उनको जप और ध्यान सिखायेंगे तो वे और अधिक अंतर्मुखी होते जायेंगे।

कर्मयोग से मनुष्य की इन्द्रियाँ और उसका मन बहिर्मुखी होता है। मन बहुत बहिर्मुखी होगा तो चंचल हो जाएगा और यदि बहुत अन्तर्मुखी होगा तो कुछ और हो जायेगा, जैसे अवसाद। इसलिए दोनों में संतुलन कायम होना चाहिए। दूसरी बात यह कि कर्मयोग करने से मनुष्य के मन को एक दिशा मिलती है। कर्मयोग का तात्पर्य यहाँ केवल निष्काम कर्म से नहीं, बल्कि हम और आप दैनिक जीवन में जो शारीरिक क्रिया-कलाप करते हैं उससे भी है। अगर आप कोई भी काम नहीं करोगे तो आपका मन व्यर्थ के चिंतन में इधर-उधर भागेगा और आपकी शक्ति व्यर्थ ही नष्ट होती जायेगी। इसलिए मन को व्यर्थ के चिंतन और विक्षेपों से रोकने के लिए कर्म करना जरूरी है। अब ये जो बाह्य कर्म हैं, इन्हीं को कर्मयोग बनाया जाता है।

जब कर्म बिना किसी सजगता के किया जाय तो उसको सामान्य कर्म कहेंगे, जो साधारण दुनिया करती है, मगर महान् उद्देश्य और विशेष महत्त्व देकर सही ढंग से जब कर्म किया जाता है तो उसको 'कर्मयोग' कहते हैं। कर्म करने का ढंग हरेक व्यक्ति का अलग-अलग होता है। आप कहेंगे, 'मैं कर्मयोग करता हूँ समाज के लिए।' हम कहते हैं, 'हम कर्म करते हैं और यदि नहीं करें तो क्या करें? समय व्यतीत करने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा।' तीसरा आदमी कहता है, 'हम कर्म करते हैं, फल मिले या न मिले, उसकी चिंता क्या! हमें तो कर्म करने से मतलब है।' बहुत-से लोग कहते हैं, 'हम कर्म करेंगे तो प्रवीणता के साथ करेंगे।' यह उनका अपने तरीके का कर्मयोग है, लेकिन जब काम करते-करते मनुष्य का मन कर्म में लीन होकर डूबने लगता है, एकाकार होने लगता है तो वह 'कर्मयोग' कहलाता है।

मौन के अभ्यास से हमें ऐसा कौन-सा लाभ प्राप्त होता है जो हमें कर्म-योग से प्राप्त नहीं हो सकता?

मौन अभ्यास के अपने विशेष लाभ हैं और उसी प्रकार से कर्मयोग के भी अपने विशेष लाभ हैं। मौन का अभ्यास करने से ध्यान की क्रिया में उन्नति होगी क्योंकि मौन से मन अधिक शांत होता है और अगर मौन का अभ्यास

कुछ महीनों या वर्षों तक किया जाय तो उससे संस्कारों का शुद्धीकरण होता है। इतनी शीघ्र गति से कर्मयोग द्वारा संस्कार शुद्धि नहीं होती है।

कर्मयोग के द्वारा साधक की आत्म-सजगता याने स्वयं के प्रति जागरूकता में वृद्धि होती है। इस सजगता वृद्धि से धीरे-धीरे ध्यान में बहुत-सी चीजें हमारे सामने प्रकट होती जाती हैं, लेकिन मौन के अभ्यास द्वारा इस सजगता में शीघ्रतर वृद्धि होती है और कर्मों का क्षय बड़े पैमाने पर होता है। इसलिए कर्मयोग और मौन के अभ्यास में एक सुंदर समन्वय होना चाहिए जिससे हम अपने कर्मों का नाश व्यवस्थित ढंग से कर सकें। तब हमारी साधना अधिक सफलता से संपन्न होगी।

कभी-कभी मृतक सम्बंधियों के प्रति ईर्ष्या, क्रोध एवं चिड़चिड़ापन की उत्पत्ति उनके मरते समय क्यों होती है? स्थिति यहाँ तक हो जाती है कि उसका निरोध करना कठिन हो जाता है और स्वप्न में भी उसकी स्मृति निरंतर आने लगती है।

यह मनुष्य का स्वभाव है, यह उसकी नास्तिकता है। मनुष्य की नास्तिकता के तीन रूप होते हैं – भूतकाल के प्रति पश्चात्ताप, वर्तमान से असंतोष और भविष्य के प्रति व्यग्रता। इसका मतलब है कि वह ईश्वर को नहीं जानता, उसके

नियमों को नहीं जानता और उस अखंड लीला को नहीं समझता जो प्रत्येक घटना का नियमन, संचालन और नियंत्रण करती है। इसीलिए भूतकाल के प्रति चिड़चिड़ापन और क्रोध, वर्तमान के प्रति असंतोष और भविष्य के प्रति चिंता यानी व्यग्रता उत्पन्न होती है।

जब कोई आदमी मर जाता है तब उसके प्रति गुस्सा करने से कोई फायदा नहीं है क्योंकि तुम्हारे मन का बेतार उसके पास पहुँचने वाला नहीं है। उसकी सीमा दूसरी है, तरंग दूसरी है। उसके पास कुछ भी पहुँचने वाला नहीं है। उससे जो नुकसान पहुँचेगा तुम ही को पहुँचेगा क्योंकि जब तुम क्रोध करते हो, पश्चात्ताप करते है या चिड़चिड़ापन आता है तो वह तुम्हारे ऊपर 'बूमरैंग' की तरह वापस आता है। बूमरैंग ऐसा अस्त्र होता है जो फेंककर वापस आता है। इसी तरह प्रत्येक विचार अपनी ही ओर वापस आता है। जैसे तुम्हारा दुश्मन हो, तुम उसे गाली देते हो, उसके बारे में बुरा सोचते हो और श्राप देते हो तो वह घूमकर तुम्हारे ही पास आता है। इसीलिए संत कबीर ने कहा है –

जो तोको काँटा बुवै, ताही बोय तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं त्रिशूल॥

अच्छा-बुरा, दोनों तरह का कर्म वापस आता है। यह अखंड सिद्धांत है। इससे कोई बच नहीं सका, चाहे कोई माने या न माने। अब जो व्यक्ति मर गया उसके प्रति संवेदना और प्रार्थना की भावना होनी चाहिये क्योंकि अब उसका सम्बंध जीवन की घटनाओं से बिल्कुल नहीं रहा। उसने सब कुछ छोड़ दिया, वह सेवानिवृत्त हो गया है। अब उसको बार-बार अपने मन में कोसो, यह खराब और बेकार की बात है।

जीवन से ऊब जाने पर क्या करना चाहिए?

अगर कोई जीवन से ऊब गया है तो इसका मतलब है कि वह जीवन से ज्यादा आसक्त था। जो मनुष्य जीवन से वास्तव में विरक्त है उसे जीवन या दुनिया से कोई दुःख या झुंझलाहट नहीं होती है, परंतु जिसको जिंदगी से शिकायत है और दुनिया अस्वीकार है उसे बहुत दुःख और बेचैनी का सामना करना पड़ता है। इसलिए जो लोग ऊबे हुए हैं उनके मन में जीवन के प्रति सम्मान की भावना पैदा करनी चाहिए। जीवन की हर वस्तु से, जीवन के हर आयाम से एक मोह होना चाहिए और उसके प्रति एक सम्मान की भावना होनी चाहिए।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

ईशावास्योपनिषद्

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 102, ISBN: 978-93-81620-70-0

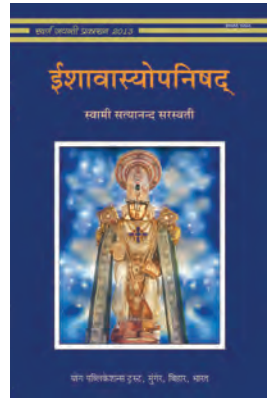

उपनिषद् भारतीय विचार-परम्परा का सर्वश्रेष्ठ रत्न और चिंतन की पराकाष्ठा मानी जाती है। इस क्रम में ईशावास्योपनिषद् सबसे पहली उपनिषद् मानी जाती है। इस गहन, विद्वत्तापूर्ण उपनिषद्-भाष्य में श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने ईशावास्योपनिषद् में निहित वेदान्तिक सत्यों को यौगिक विचारधारा और अपनी व्यक्तिगत साधना के अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में बड़े सरस और सुन्दर ढंग से उजागर किया है। इन मंत्रों की सुबोध, सारगर्भित व्याख्या पाठक को अनायास ही उस ऊँची आध्यात्मिक उड़ान पर ले जाती है, जो उपनिषदों का मूल प्रयोजन रहा है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप
हरि: ॐ

हमें यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध हैं –

www.satyamyogaprasad.net
www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2022 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2022 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्
सम्पादक